वार्षिक रु. ८० मूल्य रु. १०
विवेक ज्योति
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
वर्ष ५३ अंक ८ अगस्त २०१५

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ८

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–

आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति मदुरै (तमिलनाडू) स्थित रामकृष्ण मठ की है। इस मठ की स्थापना १९७५ में हुई थी और १९८७ में रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ के केन्द्र के रूप में इसका पंजीयन हुआ। १९९८ में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के भव्य सार्वजनिक मन्दिर का निर्माण हुआ, जिसमें नित्य-पूजा, भजन, सत्संग आदि कार्यक्रम होते रहते हैं। आश्रम द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय 'श्रीरामकृष्ण मठ सारदा विद्यालय' में ४९२ बच्चों को आदर्श शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा एक नि:शुल्क ट्यूशन केन्द्र है और निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

(आवरण-पृष्ठ सज्जा: स्वामी अनुग्रहानन्द)

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

आदरणीय सम्पादक महोदय,

सादर अभिवादन ! सनातन परम्परा में प्रचलित देव-देवियों की आरती के रूप में माँ सारदा की आरती अत्यन्त सुन्दर एवं सटीक है, इसमें कवित्व की प्रतिभा झलकती है। सारदा शब्द में तालव्य ध्वनि होने से 'शारदा' का लेख होना चाहिये। विवेक ज्योति में सुझाव के बिन्दु –

१. पत्रिका के लिए आईएसएसएन संख्या अवश्य लेने का कष्ट करें, जिससे पत्रिका में प्रकाशित शिक्षक-लेखकों को शैक्षिक लाभ मिल सके।

२. समय-समय पर सम्पूर्ण सदस्य सूची प्रकाशित करें।

३. यदि सम्भव हो, तो विषय-विशेषज्ञ के रूप में सम्पादक मंडल में कुछ विद्वानों का नाम-स्थान अवश्य दें।

४. लेख रचना के अन्त में रचनाकार का पूरा पता दें अथवा सचलभाष एवं अणुडाक भी दे सकते हैं।

५. विषयानुसार कुछ स्थायी स्तम्भों को निर्धारित करें, तो उत्तम होगा।

६. समसामयिक विषयों पर सम्पादक द्वारा सम्पादकीय का प्रकाशन भी किया जाय, क्योंकि पत्र एवं पत्रिकाओं की आत्मा होती है सम्पादकीय।

७. मिशन के अच्छे प्रेरक समाचारों, गतिविधियों को भी प्रकाशित करने का कष्ट करें, यथासम्भव निर्धारित विशिष्ट आयोजनों का विज्ञापन भी प्रकाशित करें, इससे लोगों में जागरुकता भी आएगी।

८. प्रकाशन पता विवरण पृष्ठ पर 'न्याय-क्षेत्र – रायपुर' का उल्लेख करें।

९. प्रकाशनार्थ आए हुए बड़े लेखों को क्रमश: अंशांशानुगत प्रकाशित करें।

१०. यदि सम्भव हो सके, तो अद्वैत आश्रम, कोलकाता से प्रकाशित विवेकानन्द साहित्य के विभिन्न खण्डों को सर्व सुलभ कराने की दृष्टि से दो-दो पन्नों को विवेक ज्योति में क्रमश: प्रकाशित करें।

११. सम्पादकीय पता में सम्पादक का पूरा पता सचलभाष एवं अणुभाष जोड़िए।

१२. पत्रिका के प्रकाशन कालावधि में हिन्दी तिथि एवं संवत का भी उल्लेख करें, जिससे पाठकों में भारतीय तिथियों के प्रति अनुराग एवं बोध उत्पन्न हो।

१३. किन्हीं अवसरों पर अपने विभिन्न लेखकों के सम्मेलन का भी आयोजन करें। – **डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणी'**
हिन्दी विभागाध्यक्ष, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५३ **अगस्त २०१५** **अंक ८**

तुलसीदासजी के पद

तुलसी जयन्ती विशेष

(१)

ताहि ते आयो सरन सबेरें ।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरें ।।
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु, फिरत रैन-दिन घेरें ।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहि फेरें ।।
दोष-निलय यह विषय सोकप्रद कहत संत श्रुति टेरें ।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरें ।।
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरें ।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें ।।
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें ।
तुलसिदास यह बिपति बागुरौ तुम्हहिं सों बनै निबेरें ।।

(२)

केहू भाँति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिये ।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिये ।।
सहस सिलातें अति जड़ मति भई है ।
कासों कहौं कौन गति पाहनहिं दई है ।।
पद-राग जाग चहौं कौसिक ज्यौं कियो हौं ।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं ।।
करम कपीश बालि-बलि, त्रास त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ नाथ ! तेरी बाँह बस्यो हौं ।।
महा मोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं ।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं ।।

(विनयपत्रिका, पृ-२२८, २३६)

पुरखों की थाती

प्रभुर्विवेकी धनवाँश्च दाता
विद्वान्विरागी प्रमदा सुशीला ।
तुरङ्गमः शस्त्रनिपातधीरो
भूमण्डलस्य आभरणानि पञ्च ।।४६२।।

– संसार में पाँच प्रकार के लोग दुर्लभ और पृथ्वी-मण्डल के आभूषण-स्वरूप हैं – (१) विवेकवान स्वामी, (२) धनवान दाता, (३) वैराग्ययुक्त विद्वान्, (४) शीलवान नारी और (५) अश्व तथा शस्त्रों से रहित धीर पुरुष।

प्रमदा मदिरा लक्ष्मीर्विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
दृष्ट्वोन्मादयत्येका पीता चान्यातिसंचयात् ।।४६३।।

– नारी, मदिरा तथा धन – ये तीन प्रकार के मद्य होते हैं। इनमें से एक तो देखने मात्र से, दूसरा पीने से और तीसरा अति-संचय से उन्मत्त बना देता है।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ।।५६४।।

– निश्चय ही निम्न कोटि के लोग विघ्न के भय से कार्य को आरम्भ ही नहीं करते; मध्यम श्रेणी के लोग कार्य शुरू करने के बाद बाधाओं से पीड़ित होकर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं और उत्तम कोटि के लोग बारम्बार विघ्नों से आहत होकर भी अपने आरम्भ किये कार्य को पूरा किये बिना बीच में नहीं छोड़ते।

प्रियं ब्रुयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः ।
दाता नापात्र वर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ।।४६५

– उदार को मीठी वाणी बोलनी चाहिए। वीर को चाहिए कि वह डींग न हाँके। दाता अपात्र को दान न दे और तेजस्वी को निष्ठुर नहीं होना चाहिए।

विविध भजन

कभी अगले छन के भरोसे न रहना

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, झाँसी

ये तन कीमती है मगर है विनाशी
कभी अगले छन के भरोसे न रहना।
निकल जायेगी छोड़ काया को पल में
सदा श्वाँस धन के भरोसे न रहना।।
इक पल में योगी इक पल में भोगी
पल भर में ज्ञानी पल में वियोगी,
बदलता जो क्षण-क्षण में वृत्ति अपनी
सदा अपने मन के भरोसे न रहना।।
हम सोचते काम दुनियां में कर लें
धन धाम अर्जित कर नाम कर लें।
फिर एक दिन बनकर साधु रहेंगे
उस एक दिन के भरोसे न रहना।।
तुझको जो मेरा-मेरा कहेंगे
जरूरी नहीं वे भी तेरे रहेंगे।
मतलब से मिलते हैं दुनिया के साथी
सदा उस मिलन के भरोसे न रहना।।
राजेश अर्जित गुरु ज्ञान कर लो
या प्रेम से राम गुन-गान कर लो।
अथवा श्रीराम-नाम रटो नित नियम से
किसी अन्य गुन के भरोसे न रहना।।

मन क्यूँ धावे चहुँ ओर

सतीश कुमार, लखनऊ

रे मन क्यूँ धावे चहूँ ओर
दिनभर मनुआ तन संग डोले, रात स्वप्न संग लेत हिलोर।
कर्ता से तू कर्म कराता, वक्ता संग तू करत किलोल।
रे मन क्यूँ धावे चहूँ ओर
कभी-कभी तन को बिसरता, भागत क्यू हैं रे मन मोर
कोई एक दिशा हो जिसमें ठौर ठिकानौ तोर।। रे मन..
मुरली की धुन सुनकर गोपी, भागत वन घनघोर।
फिर भी श्याम सुरत की भूखी, इत-उत खोजत चंद्र चकोर
एक लक्ष्य है एक देवता, एक रूप मन मोर।
एक ग्यात की एक परीक्षा, धैर्य धरे चित मोर।।
रे मन क्यूं धावे चहूँ ओर।

हे रामकृष्ण भगवान प्रभु !

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

हे रामकृष्ण भगवान प्रभु
मेरा मन-मन्दिर निज धाम करो।
तुम परमेश्वर सुखधाम प्रभु
मेरा जीवन भी सुखधाम करो।।

तुम भक्ति मेरे, तुम शक्ति मेरे
तुम ज्ञान मेरे, तुम ध्यान मेरे।
तुम मंगल के हो धाम प्रभु
मेरा जीवन मंगलधाम करो।।

अधरों पर केवल नाम तेरा
हिय में हो केवल ध्यान तेरा।
तुम आनन्द के हो सिन्धु प्रभु
मेरा जीवन आनन्दधाम करो।।

तुमसे मेरा अनुराग रहे
विषयों से सदा विराग रहे।
चित्त त्रिवेणी का प्रयाग रहे
प्रभु ऐसी बुद्धि प्रदान करो।।

गंगा जैसी पावनता दो
दिव्यता और सज्जनता दो।
मेरे जीवन में मानवता दो
प्रभु ऐसा मुझे महान करो।।

प्रभु दिव्य ज्योति हिय वास करो
सब जन का भवदुख नाश करो।
तुम पूरणकाम हो मेरे प्रभु
हम सबको पूरणकाम करो।।

सम्पादकीय

वह संन्यासी जो देशवासियों के लिये रातभर रोता रहा

यह संसार बड़ा विलक्षण है। इसमें रहनेवाले प्राणी भी विलक्षण हैं। किसी ने इसे अघटन-घटन-पटीयसी माया की संज्ञा दी, तो किसी ने इसे ईश्वर की लीलाभूमि से संज्ञित किया। किसी ने इसे ब्रह्म का विवर्त माना, तो किसी ने इसे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहा। किसी ने कहा कि यह संसार धोखे की ठट्टी है, तो किसी ने कहा कि यह संसार आनन्द की कुटिया है। किसी ने कहा कि यह जो कुछ भी हो, लेकिन दुखदायी है, यहाँ ब्रह्म भी आकर व्यथित होता है – पंचभूतेर फाँदे, ब्रह्म पड़े काँदे – पंचभूतों के फंदे में पड़कर ब्रह्म भी यहाँ रोता है। इसीलिये किसी ने एक भजन गाया था – 'यह जगत बड़ा दुखदाई हरि का भजन करो रे भाई।' किसी ने कहा कि यह संसार मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य है – ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। तब किसी ने कहा, जब यह माया का संसार है और हमें सत्य का आभास कराकर दुख देता है, तो क्यों इसमें फँसे हो? इससे बाहर निकल चलो। जाकर पुन: अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाओ। बहुत से लोगों को यह बात जँच गयी और वे चुपचाप किसी वन-प्रान्त में जाकर तप में लीन होकर इस संसार से निकलने का प्रयास करने लगे और कुछ लोग इस मायामय दुखमय जगत के अतीत पहुँच सदा हेतु भव-बन्धनों से मुक्त भी हो गए।

अब उन सामान्य प्राणियों को कौन देखे, जो जन्म-जन्मान्तरों से इस माया के कुचक्र में पड़कर अतिशय कष्ट भोगते हुए चले आ रहे हैं। इतिहास साक्षी है। परदुख-कातर होकर अवतार पुरुषों, आचार्यों, सन्तों, भक्त-राजपुत्रों तक ने अपने जीवन के महान परम पुरुषार्थ मोक्ष का भी त्याग किया और दूसरों के जीवन में सुख का समावेश किया। शिवि ने प्रार्थना करते हुए कहा –

न त्वहं कामये राज्यं न सुखं न पुनर्भवं।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

रन्तिदेव ने प्राणियों के दुखमुक्ति की याचना की –

न कामयेऽहं गतिमिश्वरात् पराम् अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्त्तिं प्रपद्येऽखिल देहभाजाम् अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।

भगवान बुद्ध ने करुणा-विगलित होकर प्राणियों के दुखमुक्ति का उपाय कठोर तप से खोजा।

१९वीं सदी में स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे महान संन्यासी हुए, जिन्होंने अपनी मुक्ति की आकांक्षा को ठुकरा कर अपने देशवासियों की सुख-सुविधा और प्रसन्नता के लिये कार्य किया। देशवासियों की वेदना ने उन्हें शान्ति से बैठने नहीं दिया। हिमालय की गुफाओं में ध्यानस्थ यति को संसार के प्राणियों की वेदना नीचे खींचकर लाती है और जन-सुख के मार्गानुसन्धान के लिये प्रेरित करती है और उसमें संलग्न करती है। जब उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव से अहर्निश समाधि में निमग्न रहने की प्रार्थना की थी, तब उन्हें गुरुदेव से फटकार तो मिली, लेकिन साथ ही उनके भावी जीवन की झलक भी मिली। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था, मैं तो समझता था, तुम एक विशाल वट-वक्ष के समान बनोगे, जिसकी छाया में लोग शान्ताश्रय पायेंगे। अब वह समय आ गया था, संसार के दावानल से दग्ध प्राणियों को शीतलता प्रदान करने का। इसीलिये तो, वे कालान्तर में कहते हैं, "जीवन भर दुख-भोगने के बाद मैंने यही समझा है कि इस संसार-रूपी नरक-कुण्ड में यदि एक दिन के लिये भी, एक व्यक्ति के मन में भी थोड़ा-सा सुख तथा शान्ति उत्पन्न की जा सके, तो केवल उतना ही सत्य है।"

अयोध्या का राज्य त्याग कर ऋषि-मुनि आदि के रक्षार्थ दैत्यनाश हेतु वन-वन में भ्रमण करनेवाले रामचन्द्रजी जन-जन के श्रीराम बन जाते हैं। राजसत्ता-सुख का त्याग कर प्राणियों के दुख के निवारणार्थ अरण्य में जाकर निर्वाण के अन्वेषक गौतम महात्मा बुद्ध बनकर लोकप्रिय हो जाते हैं। वैसे ही अपनी मुक्ति और समाधि सुख की तिलांजलि देकर भारत के वन-गिरि, सरिता, उदधि पर्यन्त, गरीब की झोपड़ी से लेकर राजाओं तक की अट्टालिकाओं में देशवासियों के कल्याण की भावना से भ्रमण करनेवाले विवेकानन्द जन-जन के विवेकानन्द हो जाते हैं। देश ही नहीं विदेश के वैभव और सम्मान भी स्वामी विवेकानन्द को क्षणभर के लिये भी अपने देशवासियों की सम्वेदना से पृथक नहीं कर सके।

लोग भौतिक सुख की अप्राप्ति, तन-दुख, मन-व्यथा से पीड़ित होकर रोते हैं, कोई भव-बन्धन से व्यथित होकर तड़पता है, किन्तु अपने देशवासियों के लिये कौन रोता है? किसी सन्त-कवि ने बड़ी मार्मिकता से लिखा है –

कोई तन के लिये रोता, कोई धन के लिये रोता,
कोई जन के लिये रोता, कोई मन के लिये रोता,
वही नर महामानव है, वही नर भाग्यशाली है,

जो अपना स्वार्थ तज करके वतन के लिये रोता ।।

ऐसे महामानव थे स्वामी विवेकानन्द !

स्वामीजी का देशवासियों हेतु निशा-क्रन्दन और माँ से व्याकुल होकर प्रार्थना करना

विश्वधर्म-सम्मेलन, शिकागो की वह प्रथम महानिशा इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई । जिस दिन अपनी अभूतपूर्व सफलता और अमेरिकावासियों द्वारा किए गए सम्मान ने भी यति को अपने देशवासियों के वेदना से तनिक भी विस्मृत नहीं कर सका । त्यागी नि:स्पृह संन्यासी सर्वसुविधायुक्त अतिथि-कक्ष में गहन रात्रि में जमीन पर लोटकर क्रन्दन करते हुये माँ से प्रार्थना करते हैं – "हे माँ ! मैं इस नाम-यश को लेकर क्या करूँ, जबकि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हुए हैं ! हम गरीब भारतवासी ऐसी बुरी हालत तक पहुँच गए हैं कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ लोग अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिये लाखों रुपये खर्च कर देते हैं ! भारत की जनता को कौन उठाएगा? कौन उनके मुख में अन्न देगा? मैं उनकी किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ?"

ऐसी संवेदना थी, ऐसा अचल सघन दृढ़ प्रेम था स्वामीजी का अपने देशवासियों के प्रति !

उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है यह, जिसने लोक-जीवन को झकझोर दिया और जन-जन के हृदय-सिंहासन पर स्वामीजी को सदा के लिये अधिष्ठित कर दिया ।

स्वामी विवेकानन्द स्नेह और संवेदना को मानव कल्याण का प्रमुख साधन मानते हैं। वे कहते हैं – "प्रेम और सहानुभूति ही एकमात्र मार्ग है। प्रेम ही एकमात्र उपासना है ।" मानवीय संवेदना के प्रति अश्रु-प्रवाह स्वामीजी के जीवन में कई बार घटा है, जिससे उनके उदात्त उत्कृष्ट मानव-हितैषिता का परिचय मिलता है । एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है, जो बेलूड़ मठ में ही घटी थी ।

स्वामीजी विदेश से आकर बेलूड़ मठ में हैं। उनके एक गुरुभाई स्वामी विज्ञानानन्द जी भी बेलूड़ मठ ही हैं। वे स्वामीजी के कक्ष के पास ही रहते थे। एक बार रात में सिसकने की आवाज सुनाई दी । वे उठकर स्वामीजी के कक्ष की ओर चले। उन्होंने देखा कि स्वामीजी फूट-फूटकर रो रहे हैं। विज्ञानानन्दजी ने पूछा, स्वामीजी क्या आप अस्वस्थ हैं? स्वामीजी को पता नहीं था कि विज्ञानानन्द जी उनके कक्ष में आ गये हैं। उन्होंने कहा, "अरे पेशन, मुझे लगा कि तुम सो रहे हो। नहीं भाई, मैं बीमार नहीं हूँ। परन्तु जब तक मेरा देश, मेरे देशवासी पीड़ित हैं, तब तक मैं सो नहीं सकता। मैं रो-रोकर श्रीरामकृष्ण देव से प्रार्थना कर रहा था कि अतिशीघ्र राष्ट्र की स्थिति को सुधार दें ।"

भारत-भारतवासियों के प्रेम के जीवन्त विग्रह स्वामीजी की देशस्थ जन-संवेदना ऐसी विलक्षण और मार्मिक थी ।

स्वामी विवेकानन्द की यह पीड़ा अमेरिका जाने के पूर्व अपने गुरुभाइयों से भेंट के समय और अधिक व्यक्त होती है । अमेरिका जाने के पहले स्वामीजी से भेंट करने उनके गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी तुरीयानन्द (हरि महाराज) पहुँचे । तब स्वामीजी ने कहा – "हरि भाई ! मैं अभी भी तुम्हारे तथाकथित धर्म को समझने में असमर्थ हूँ। परन्तु मेरा हृदय बहुत विराट हो गया है और मैं दूसरों के कष्टों का अनुभव करना सीख गया हूँ ! विश्वास करो, जब मैं किसी को कष्ट में देखता हूँ, तो सच कहता हूँ, मेरे हृदय में पीड़ा होती है, मैं व्यथित हो जाता हूँ !"

गिरि-वन-प्रान्तर में घूम-घूम,
सरिता, सिन्धु के पार में जायो,
सुखी कैसे हों मेरो देश के लोग,
एहि सोच से यति को नींद न आयो ।।
लोक-लोकायन हेरि थक्यो,
पर ऐसो स्वामी खोजि न पायो ।
जो निज मुक्ति को छाड़ि दियो
निज देशवासी हेतु अश्रु बहायो ।।

स्वामीजी की यह पीड़ा राष्ट्रीय पीड़ा बन जाती है। वे राष्ट्रवासियों को सुखी, समृद्ध और दुखमुक्त करने का दृढ़ संकल्प लेकर अपने गुरुभाइयों और अनुयाइयों के साथ कार्य में लग जाते हैं। तब बरबस महाकवि के काव्य की झंकृति हो उठती है –

जो भरा नहीं है भावों से
बहती जिसमें रसधार नहीं ।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ।।

आइये, स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर स्वामीजी की देशभक्ति से प्रेरणा लेकर प्रत्येक भारतवासी – राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी, प्रबुद्ध नागरिक आबालवृद्ध सभी अपने देशवासियों के प्रति प्रेम और संवेदना जागृत करें और देशसेवा में संलग्न हो जायँ । ○○○

यह वही भारतभूमि है

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जानने से पहले तत्त्व ज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनाई थी; यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहने वाले, समुद्राकार नद हैं, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण रज पड़ चुकी है। यहीं सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यहीं उद्भव हुआ था और यहीं धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र संसार को बार-बार प्लावित कर दिया, और यही वह भूमि है, जहाँ से पुन: ऐसी ही तरंगें उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अनिवाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढ़तर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारत भूमि का जीवत्त है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सन्तानो, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव का स्मरण दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है, कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर दृष्टि डालने से केवल मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता; अत: हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अत: जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकंठ उसका जल पियो और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्वलतर, महत्तर और पहले से भी अधिक ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन-सा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा और अतीत के उसके कृतित्व पर भी, इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य ऐसे भारत की नींव डालेंगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच बीच में दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं, पर उनको मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ, फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सड़ा, इस विनाश से जो अंकुर उगा, सम्भव है वह पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाय। अवनति के जिस युग के भीतर से हमें गुजरना पड़ा, वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है, वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरू हो चुका है और उसी के सम्बन्ध में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति, धर्म, भाषा, शासन-प्रणाली – ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए हैं, वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य हैं, द्रविड़ हैं, तातार हैं, तुर्क हैं, मुगल हैं, यूरोपीय हैं, – मानो संसार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना अपना खून मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विचित्र ढंग का जमावड़ा है, आचार-व्यवहारों के सम्बन्ध में दो भारतीय जातियों में जितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है, हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एक मात्र सामान्य आधार वही है और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है, अत: भारत के भविष्य संगठन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की ही आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सबको स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं, जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते हैं हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायों के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत

(शेष भाग ३७२ पृष्ठ पर)
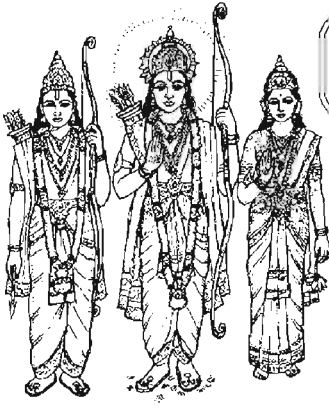
धर्म-जीवन का रहस्य (७/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

इसीलिए गोस्वामीजी भगवान से प्रार्थना करते हैं –

कामिहि नारि पिआरि जिमि
लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर
प्रिय लागहु मोहि राम ।। ७/१३० ख

भगवान मुस्कुराकर बोले – तीन विकारों में से काम और लोभ का ही नाम लिया, क्रोध को भूल गये क्या? गोस्वामीजी ने कहा – नहीं महाराज, क्रोध के लिए भी मैंने सोच रखा है। – क्या? दोहावली रामायण में वे कहते हैं – बने तो आपसे बने और यदि आपसे बिगड़े, तो इतना बिगड़े कि जिसकी कोई सीमा न हो –

बनै तो रघुबर सो बनै, कै बिगरै भरपूर ।
तुलसी औरन सो बनै ता बनिवै में घूर ।।

भगवान ने कहा – मुझसे क्यों झगड़ना चाहते हो? हम अन्य लोगों से तुम्हारी बनवा देंगे। बोले – नहीं महाराज, संसारी लोगों से बनने में भी क्या रखा है? आपसे तो बनने और बिगड़ने, दोनों में कल्याण है।

जब हमारे अन्त:करण में प्रीति होती है, तो वह प्रीति प्रभु को इतना परिवर्तित कर देती है कि जब भक्त कहता है कि आप संसार में उतरिये, आप भी कर्म के परिणाम भोगिये, तो भगवान उसे स्वीकार कर लेते हैं। भगवान जब मानव शरीर धारण करके मर्त्यलोक में अवतरित हुए और कर्म के परिणाम सामने आए, तो उन्होंने अपने जीवन के द्वारा मानो यह शिक्षा दी कि कर्म भले ही अपने परिणाम की सृष्टि करे, परन्तु उस परिणाम से हम प्रभावित होते हैं या नहीं होते, ये दोनों बातें अलग-अलग हैं। क्रिया के द्वारा किसी घटना की सृष्टि हो सकती है, पर क्रिया का अर्थ लगाने में, व्याख्या करने में व्यक्ति स्वतन्त्र है। कर्म के द्वारा जो प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जो कठिनाइयाँ और समस्याएँ पैदा होती हैं, ईश्वर ने स्वयं मनुष्य के रूप में अवतरित होकर मानो उन समस्याओं को अपने जीवन में स्वीकार किया। अवतार का अर्थ यह है कि वह नीचे मर्त्यलोक में उतरा और उसने मानवीय जीवन तथा उसकी समस्याओं को स्वीकार कर, सुख और दु:ख की घटनाओं को स्वीकार कर, जीवन के सारे प्रश्नों का समाधान दिया।

भगवान राम के चरित्र की यह महानतम भूमिका है। मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि हम लोगों के जीवन की और विश्व के सारे मानव-मात्र के जीवन की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका उत्तर आपको रामचरित-मानस में, भगवान के चरित्र में न मिले। सावधानी केवल इस बात की रखनी है कि हम इस राम-चरित्र की व्याख्या कहीं ऐसी न कर डालें कि जिस उद्देश्य से उन्होंने अपनी लीला की, अपना चरित्र प्रकट किया, उसका उद्देश्य ही मिट जाय।

इस 'धर्म' के सन्दर्भ में, अब मैं आपका ध्यान रामायण के एक अंश-विशेष की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा। वह प्रसंग ऐसा है कि उसे जितनी बार पढ़ता या कहता हूँ, तो लगता है कि आध्यात्मिक, सामाजिक तथा आधिदैविक जगत का शायद ही कोई ऐसा प्रश्न होगा, जिसका समाधान आपको उस प्रसंग में न मिले। वह प्रसंग वैसे रामलीला में भी बड़ा लोकप्रिय है और वह है – परशुरामजी और भगवान राम का संवाद। वैसे तो समाज में लोग इसे इस नाम से नहीं जानते, वे कहते हैं – लक्ष्मण-परशुराम-संवाद। यह भी बड़ी विचित्र बात है। भगवान राम ही अधिक बोले। वे लक्ष्मणजी से कम नहीं बोले। तो भी लोगों ने इसे 'भगवान राम से परशुराम का संवाद' न कहकर इसका नामकरण किया – 'लक्ष्मण और परशुराम का संवाद'। यह प्रसंग कितना लोकप्रिय है ! लोग कितने ठठाकर हँसते हैं, कितने मग्न हो जाते हैं ! कई स्थानों में तो पूरी रामलीला न हो, तो भी लोग यही प्रसंग अलग से चुनकर इसी की लीला कर लेते हैं और समझ लेते हैं कि इससे बढ़कर आनन्ददायी अन्य कोई प्रसंग नहीं है। उनको

उस प्रसंग में जो आनन्द मिलता है, वह क्यों मिलता है? ब्रह्मलीन स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज ने एक बार यही बताया था।

आश्रम में रामलीला हो रही थी, परशुराम-लक्ष्मण के संवाद के दिन इतनी भीड़ उमड़ी कि लोगों के खड़े होने के लिए भी स्थान नहीं बचा। भीड़ को देखकर तो ऐसा लगता है कि मानो वही सफलता का प्रमाणपत्र है। परन्तु उन्होंने कहा – देखो, आज की भीड़ को देखकर लोगों की जिस मानसिक दशा का परिचय मिलता है, उससे कितनी निराशा होती है। कल भी तो राम की ही लीला थी, परन्तु कल इतने कम लोग थे और आज इतनी भीड़? इसका अर्थ है कि रामलीला के भी जिस प्रसंग में 'तू-तू' 'मैं-मैं' का झगड़ा हो, वही लीला अच्छी लगती है, क्योंकि वे राम में भी अपने को ही ढूढ़ने की चेष्टा करते हैं। वे ऐसा कोई स्थान ढूढ़ते हैं, जहाँ लगे कि हम भी उन्हीं के आस-पास कहीं खड़े हैं।

अब कठिनाई यह है। लीला में जो आकर्षक लगता है, वह व्याख्या में आपको आकर्षक नहीं लगेगा। आप विचार करके देखिए – वर्ण और आश्रम के सन्दर्भ में कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसका समाधान इस राम-राम संवाद में न किया गया हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि आप उन पूरी पंक्ति के प्रत्येक अक्षर को इस दृष्टि से विचार करके देखिए कि इस संवाद का उद्देश्य और तात्पर्य क्या है? भगवान राम की लीला में इस प्रसंग का एक विलक्षण उद्देश्य है, परन्तु कई लोगों को यह बड़ा अटपटा प्रतीत होता है।

मुझे स्मरण आता है। दिल्ली में प्रतिवर्ष चैत्र नवरात्र में कथा होती है। परशुरामजी के प्रसंग पर चर्चा चली, तो कथा समाप्त होने के बाद एक सज्जन आए। क्रोध से तमतमा रहे थे। उन्होंने कहा – भगवान परशुराम का यह अपमान ! तुमने ब्राह्मण होकर इतना अनर्थ किया ! सुनकर मैं बड़ा ही निराश और हताश हुआ। परशुराम जी का अपमान हुआ, इसका उन्हें ज्यादा दु:ख नहीं हुआ, जितना इस बात से हुआ कि परशुराम ब्राह्मण थे, वे भी ब्राह्मण थे और मैं भी ब्राह्मण, इसीलिए मुझे तो कम-से-कम ध्यान रखना चाहिए।

हमारी विडम्बना तो यह है कि जो नहीं मानते और आलोचना करते हैं, वे तो करते ही हैं। जो मानते भी हैं, वे जैसा मानते हैं, वह मानना भी कोई मानना नहीं है। भले ही लोग कहते हों कि हमारा देश बड़ा धार्मिक है, परन्तु इतना कष्ट भोग रहा है। बात विनोद जैसी लगती है, परन्तु बड़े दुख की बात है कि चाहे वर्ण-धर्म हो, या आश्रम-धर्म हो, चाहे ईश्वर का सन्दर्भ हो, परन्तु आप विचार करके जरा गहराई से देखिए, जब कोई व्यक्ति इस तरह से विचार करके देखे कि भगवान की कौन-सी जाति है और किस जाति के लोगों को उसका समर्थन करना चाहिए, तो बात बड़ी गम्भीर हो जाती है। परशुराम-जयन्ती मनाई जाती है, तो यह अच्छी बात है। श्रीराम की जयन्ती है, तो परशुरामजी की भी जयन्ती मनाई जानी चाहिए। परन्तु यह मानकर कि चूँकि परशुरामजी ब्राह्मण-भगवान थे, इसलिये उनकी जयन्ती केवल ब्राह्मण ही मनायें, तब तो अनर्थ ही हो गया। जब आपको अपनी ही जातिवाला भगवान भी चाहिए, अपनी ही जातिवाला सन्त भी चाहिए, अपनी ही मान्यता वाला धर्म भी चाहिए, तो वस्तुत: आप चाहते क्या हैं? इससे तो यह पता चलता है कि न तो आपको भगवान की आवश्यकता है, न धर्म की और न सन्त की। इसका अर्थ यह हुआ कि आपको कुछ सीखना ही नहीं है। यह कितना गम्भीर प्रसंग है और यह केवल उन्हीं एक सज्जन की बात नहीं है। मैं तो कभी-कभी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो जाता हूँ।

एक राज्यपाल महोदय मेरी कथा में नित्य आते थे, लेकिन एक दिन उन्होंने जो बात कही, उसे सुनकर तो मैंने अपना सिर पीट लिया। वे सज्जन तो परशुरामजी के सन्दर्भ में रुष्ट थे, परन्तु इन्होंने कहा कि देखिए, सभा की बात तो और है, परन्तु उस ब्राह्मण-रावण का क्षत्रिय-राम ने जिस तरह से वध किया और जिस तरह आप उसका वर्णन करते हैं, वह तो ...।

अब जरा एक अन्य संकेत पर विचार कीजिये। गोस्वामीजी के विषय में तो यह प्रसिद्ध ही है कि वे बड़े ब्राह्मणवादी थे। आजकल तो उनके लिये नये-नये शब्द निकलते रहते हैं। इसके समर्थन में कहीं से दो-चार पंक्तियाँ उठाकर उद्धृत कर दी जाती हैं, परन्तु आप जरा विचार करके देखिए, स्वयं ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर भी उन्होंने एक ऐसे ईश्वर के अवतार का वर्णन किया, जिसने क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया, तो फिर आप कैसे कल्पना कर सकते हैं कि उनके मन-मस्तिष्क में सचमुच इस प्रकार का वर्णगत पक्षपात रहा होगा? तब तो उनको भी निश्चित रूप से वैसा ही करना चाहिए था, जैसा करने का आग्रह लोगों में दिखाई

देता है।

वस्तुतः इस प्रकार अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जब किसी व्यक्ति का जन्म होता है, तो हमारी यह मान्यता है कि व्यक्ति के अनगिनत जन्म हुए हैं और आगे भी न जाने कितने जन्म होंगे। यह किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा है कि पिछली बार आपने जिस वर्ण में जन्म लिया था, अगला जन्म भी उसी वर्ण में लेंगे। ऐसी स्थिति में आपका वर्णधर्म क्या होगा? आप तो जिस वर्ण में जन्म लेंगे, उस वर्ण की प्रशंसा करेंगे और दूसरे वर्णों का विरोध करेंगे। दूसरों की निन्दा करेंगे। इस जन्म में जिस वर्ण की आपने निन्दा की, अगला जन्म उसी वर्ण में हो जाय, तो क्या करेंगे? इस प्रकार तो हम लोग धर्म को मानो कैसी विपरीत दृष्टि से देखने लगे हैं! यह इसका बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष है। अब गोस्वामीजी जो कहते हैं, उस पर थोड़ा ध्यान दें। परशुरामजी के सन्दर्भ में संकेत के रूप में कुछ गम्भीर बातें रखूँगा। आप कृपया पूरी एकाग्रता से और तन्यमता से सुनेंगे। प्रिय-अप्रिय लगना तो अलग बात है।

एक बड़ा मीठा प्रसंग आया। सुग्रीव ने भगवान को देखा, तो भ्रम हो गया कि शायद ये बालि के भेजे हुए मुझे मारने आ रहे हैं। हनुमानजी को भेजा और उनसे कहा कि ब्राह्मण बनकर जाना, ताकि तुम्हारे ऊपर कोई संकट न आये। हनुमानजी ब्राह्मण बनकर गये और जाते ही प्रभु को प्रणाम किया –

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ।। ४/१/६

इस पर भगवान के होठों पर हँसी आ गई। हँसी में मानो व्यंग्य यह था कि तुम्हारा अभिनय सफल नहीं रहा। बनकर तो ब्राह्मण आ गये, लेकिन इतना भी धैर्य नहीं रहा कि क्षत्रिय से प्रणाम की प्रतीक्षा करते। वर्णधर्म में तो क्षत्रिय ब्राह्मण को प्रणाम करता है। इससे तो लगता है कि तुम नकली ब्राह्मण हो। परन्तु हनुमानजी ने जो उत्तर दिया, वह भी उतना ही तगड़ा था। हनुमानजी ने भी तुरन्त पूछ दिया – श्याम-गौर शरीरवाले आप दोनों कौन हैं? फिर कहा – क्षत्रिय रूप धारण करके वन में विहरने वाले आप लोग कौन हैं? –

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा।। ४/१/७

संकेत यह है कि महाराज, यदि मैं नकली ब्राह्मण हूँ, तो आप नकली क्षत्रिय हैं। यह तो सिद्ध ही हो गया कि आप भी वेष बनाए हुए हैं और मैं भी वेष बनाए हुए हूँ। बोले – आपने कहा कि तुम यदि सचमुच के ब्राह्मण होते, तो क्षत्रिय से प्रणाम पाने के लिए प्रतीक्षा करते। परन्तु प्रभु, आप तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। यदि आप स्वयं को क्षत्रिय और मुझे ब्राह्मण मानते होते, तो आप ही मुझे प्रणाम कर देते। आपने मुझे प्रणाम भी नहीं किया और मेरे प्रणाम का उत्तर भी नहीं दिया।

रामायण का सूत्र क्या है? मान लीजिये कि आप किसी नाटक में कार्य कर रहे हों और भिन्न-भिन्न नाटकों में आपको जिन पात्रों की भूमिकाएँ दी गयी हैं, वे भिन्न जातियों की हों, भिन्न वर्णों की हों, भिन्न प्रान्तों की हों, तो आपकी सफलता इसी में है कि आप उन नाटकों में भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का सही-सही निर्वाह करें।

गोस्वामीजी ने एक बड़ा दार्शनिक सूत्र दिया। उनसे पूछा गया कि भगवान के ये जो इतने अवतार हैं, इतने रूप हैं, इसका क्या अर्थ है? इस पर गोस्वामीजी ने एक दृष्टान्त दिया। बोले – जैसे कोई अभिनेता अपनी भूमिका के अनुकूल अभिनय करता है, वैसे ही भगवान की लीला के लिए भक्तों ने जो भी नाटक प्रस्तुत किया, भगवान ने उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसी अभिनेता के रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर दिया। परन्तु इसके साथ ही उन्होंने एक बात और जोड़ दी और वह बड़े महत्त्व की है। उन्होंने कहा – चाहे जिस भी नाटक में, वह चाहे जैसा भी अभिनय करके दिखा दे और वह लोगों को चाहे जितना भी सही दिखे, परन्तु वह जो दिखाता है, वह हो नहीं जाता –

जथा अनेक वेष धरि
नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ,
आपुहिं होइ न सोइ।। ७/७२/ख

आपुहिं होइ न सोइ (जो दिखाता है, वह हो नहीं जाता) – यही इस दोहे का प्राण है। 'हो नहीं जाता' का अभिप्राय क्या है? यदि अभिनेता ऐसी भूल करे, तो कभी उसे बड़ा सुख मिल सकता है और कभी घोर दुःख भी मिल सकता है। **(क्रमशः)**

उदास रहना कदापि धर्म नहीं है, चाहे वह और कुछ भले ही हो। प्रफुल्ल चित्त तथा हँसमुख रहने से तुम ईश्वर के अधिक समीप पहुँच सकोगे।

स्वामी विवेकानन्द

सारगाछी की स्मृतियाँ (३४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अनुग्रहानन्द ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२१-७-१९६०

सेवक – महाराजजी, हम लोग तो आश्रम में आये हैं, आप लोगों के सान्निध्य में हैं, क्या हमलोगों को किसी दूसरी साधना की आवश्यकता है?

महाराज – क्या ठाकुरजी का वह 'बिलवाला' दृष्टान्त नहीं सुना है? दिन भर सिंचाई किया और जाकर देखा, तो सारा पानी बिल से बाहर निकल गया है। वैसे ही नाम-यश, लोक-प्रदर्शन, आश्रम-सन्तुष्टि, वस्त्र-सन्तुष्टि, परोपकार का धन स्वेच्छानुसार उपयोग करना और छोटे-मोटे जमींदार के समान चाल-चलन, क्या इन सबके रहते साधन-भजन होगा?

यह शरीर तो एक बल्ब ही है। इसमें वही विद्युत-प्रवाह है। तुम स्वयं को विद्युत-प्रवाह के साथ संयुक्त कर दो। बल्ब तो कितने प्रकार के होते हैं – ४० वाट, ६० वाट और १०० वाट के।

मान लो, मैं एक मेस में हूँ। अचानक मुझे पता चला कि मेरा जो साथी है, वह भीतर-भीतर मेरी क्षति करने का प्रयास कर रहा है। किन्तु मैं मेस छोड़ भी नहीं पा रहा हूँ। उस समय हम जैसे सावधान रहते हैं, उसी प्रकार हमें इस संसार में भी सावधान रहना होगा। मैं जानता हूँ कि शरीर के काम-क्रोधादि मेरे शत्रु हैं। ऐसे रहना होगा, जिससे वे सब हमारी क्षति न कर सकें। यदि दृढ़ निश्चय हो तो, इसके बाद थोड़ा प्रयत्न करने से ही कुछ-न-कुछ अनुभव होगा। काशी जाने के लिये रुपया और मानचित्र जुट गया है। अब यात्रा प्रारम्भ करने से ही हुआ।

तुमने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' नहीं पढ़ा है? ठाकुरजी कह रहे हैं, साले डूबना नहीं चाहते, केवल मार्ग की बातें करते हैं? क्या तुमने 'तू जो तेली था, वही तेली है रे' की कहानी सुनी है? एक तेली भक्त था। वह शुद्ध तेल देता था। लोगों का उस पर विश्वास भी था। धीरे-धीरे व्यापार में लाभ होने लगा। उसे बहुत सम्पत्ति हो गयी। उसने सत्कर्म में धन-व्यय करने को सोचा। उसने गुरुदेव से कहा – गुरुजी ! मुझे बताइये कि मैं कैसे धन खर्च करू? गुरुजी भी सज्जन थे। उन्होंने कहा कि तुम एक काम करो, गाँव में पानी की असुविधा है, एक तालाब खोदवा दो। वह मान गया। गाँव के लोगों ने मिलकर एक बड़ा तालाब खोदा। उसमें अच्छा मीठा पानी निकला। तेली अपने मिट्टी के दो-मंजिले मकान से देखता है, उसके द्वारा खोदवाये गये तालाब से सारे गाँव के लोग पानी लेकर जा रहे हैं। वह देखकर प्रसन्न हो गया। वह सुन रहा है कि सभी लोग उसका नाम ले रहे हैं और उसे धन्य-धन्य कह रहे हैं तथा कह रहे हैं, तेली के तालाब का जल बहुत मीठा है। कुछ दिन बीत गये। उसके पुण्य के फल से और अधिक धन हो गया। तब उसने गुरुदेव से कहा, "गुरुदेव तालाब तो हुआ, सारा गाँव मेरा नाम ले रहा है। अब ऐसा कुछ कीजिये, जिससे दस गाँव मेरा नाम ले।" गुरुदेव ने कहा "तीन दिन बाद तुम्हें बताऊँगा।" तीन दिन बाद तेली ने गुरुदेव से पूछा - "गुरुदेव, मैं क्या करुँ?" गुरुदेव ने कहा, "एक काम करो, तुम एक रथ-मेला आयोजित करो।"

रथ का मेला लगा है। दस गाँवों से दुकानें आ रही हैं। संगीत, कीर्तन करते हुए लोग जगन्नाथदेव के रथ के साथ पंक्ति में आ रहे हैं। शाम को चारों ओर भीड़ है। जगन्नाथ जी एक रथ में धीरे-धीरे आगे जा रहे हैं। जगन्नाथजी के आगे-आगे कीर्तन-दल भजन गाते हुए चल रहा है। गुरुदेव नाचते हुए कीर्तन गा रहे हैं। तेली भी गुरुदेव के पास गाते-गाते चल रहा है। चारों ओर लोग उसका नाम ले रहे हैं, यह देखकर वह अपने को सम्भाल नहीं सका। गुरुदेव के सामने दोनों हाथ ऊपर उठाकर धेई-धेई करके नाचने लगा और बार-बार कहने लगा – "मैं क्या था, क्या हुआ रे !" गुरुदेव खोल (वाद्य-यन्त्र) के दूसरी ओर बगल में ही नाच रहे थे। तब वे खोल में ताल ठोककर (थप्पड़ मारकर) कीर्तन का ताल देते हुए गाने लगे - "तू जो तेली था, वही तेली है रे !"

हमलोग धर्म का अर्थ धर्म-सिद्धान्त नहीं मानते हैं, हम लोगों की दृष्टि में धर्म का अर्थ आध्यात्मिक जीवन और आत्मविश्वास है।

मान लो रात में एक घर में मोमबत्ती जल रही है। मोमबत्ती

को एक टोकरी से ढक देने से क्या देखोगे? दीवाल में चारों ओर छोटे-छोटे प्रकाश-बिन्दु दिखाई देंगे। टोकरी को हटा दो, तो क्या बचा? वही प्रज्वलित मोमबत्ती है। मोमबत्ती का प्रकाश ईश्वर है और छोटे-छोटे प्रकाश-बिन्दु जीव हैं।

सेवक बगल में बैठ कर गीता के छठवें अध्याय को पढ़ रहा है।

महाराज – गीता का छठवाँ अध्याय विलक्षण है। इसी बीच आँखों में अंगुली डालकर दिखाते हुए कह रहे हैं, ये-ये करो, तभी परमानन्द में दिन व्यतीत कर सकोगे। किसी की आज्ञा, कृपा और अनुग्रह का प्रश्न नहीं हैं। जैसा तुम करोगे, वैसा ही फल पाओगे। साधारण आदमी भगवान कहने से समझता है, वे स्वेच्छाचारी हैं, जब जो इच्छा हो करते हैं, जब चाहे बरसात कराते हैं और जब चाहें तब सूखा कर देते हैं। किसी को धनी बनाते हैं, किसी को गरीब बना देते हैं।

प्रश्न – ठाकुरजी ने तो कहा है, ईश्वर बालक-स्वाभाव के हैं। हो सकता है कि कोई माँग रहा है, उसे नहीं दे रहे हैं और कोई नहीं माँग रहा है, फिर भी देने के लिये पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं।

महाराज – इंग्लैण्ड के राजा भारत पर शासन करते थे। वहाँ से उन्होंने एक नियम बना दिया, उसी नियम से भारतवर्ष चलेगा। उसी प्रकार इस जगत के लिये ईश्वर ने एक नियम बना दिया है, उसी नियम से जगत चल रहा है। किन्तु यदि किसी में क्षमता हो, तो वह राजा के पास निवेदन कर सकता है। हो सकता है, तब वह नियमों के पार भी जा सकते हैं।

इंग्लैण्ड के राजा पंचम जॉर्ज जब भारत आये थे, तब उन्होंने बीस वर्ष सजा-प्राप्त कैदियों को केवल दस वर्ष बाद ही जेल से मुक्त कर दिया था। उसी प्रकार जब अवतार आते हैं, तब वे अनेकों लोगों को मुक्त कर देते हैं। यदि श्रीमाँ नहीं आतीं, तो शायद मुझे सौ-जन्मों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती। किन्तु श्रीमाँ के आने से इतना शीघ्र हो गया। अर्थात् मैं स्वयं थोड़ा-सा आगे बढ़ा, तब वे आकर आगे बढ़ा देती हैं। मैं प्रयत्न कर रहा था, शायद दस-बीस जन्मों के बाद होता, किन्तु श्रीमाँ आ गयीं, सुअवसर प्रदान कर दी, मैं बच गया। किन्तु प्रतिदिन तो अवतार नहीं आयेंगे, तुम लोग तो अवतार को नहीं पा रहे हो। तुम लोगों को तो नियमानुसार ही चलना होगा। किन्तु कृपा का भी एक नियम है। कल्पतरु उत्सव के दिन ठाकुरजी एक-दो व्यक्तियों को स्पर्श नहीं कर पाये थे। वह बात यहाँ कहने का उद्देश्य है कि भगवान नियमों के अधीन नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त ठाकुरजी की कहानी है – एक व्यक्ति शव-साधना की सब व्यवस्था करके मर गया और एक व्यक्ति बिना प्रयास के ही सिद्धि प्राप्त किया। उसका कारण उसके पूर्व-जन्मों का कर्मफल है। दो सत्ता विद्यमान है – एक दृश्यमान और एक यथार्थ। हम लोग दृश्यमान को लेकर हैं, इसलिये इतनी समस्याएँ हैं।

यदि कोई हृदय से 'भगवान की कृपा' कह सके, तो वह मुक्त ही है। वह सभी कार्यों में ईश्वर की कृपा और इच्छा को देख सकेगा। उसका मन सभी सांसारिक कार्यों में ईश्वर का ही हाथ देखेगा। इसलिये उसकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। वह अपनी बुद्धि लगायेगा, उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं रहेगी। मन केवल ईश्वरीय आनन्द की आवश्यकता का बोध करेगा। देखो, हमेशा जिसका मन भगवत्-आनन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता है, क्या वह परम-योगी नहीं है ?

प्रश्न — हम लोग घर छोड़ कर आये हैं, फिर भी आश्रम के कार्य के लिये समाज और भक्तों के साथ मिलना पड़ता है। किस प्रकार चलने से हम लोग निश्चिन्त रह सकते हैं ?

उत्तर - तुम माता-पिता, भाई-बहन, स्वजन-कुटुम्ब, घर का मान-सम्मान, तुम अपनी सम्पत्ति, धन, सबकुछ त्याग करके आये हो। यहाँ पर आकर भी यदि फिर से रुपया-पैसा, मान-सम्मान, भक्तों के साथ आत्मीयता और विषय-सम्पत्ति लेकर मत्त हो गये तो फिर क्या हुआ !

देखा है, मैं सभी लड़कों को पास आने नहीं देता हूँ। जो ठाकुरजी का भाव लेगा, विशेष रूप से उसका ही स्वागत-सम्मान करता हूँ। नहीं तो, केवल किसी एक व्यक्ति से क्यों सम्पर्क बढ़ाऊँगा?

एक लड़का आता था, वह बचपन में प्रतिभाशाली था। वह बरसात में भी आश्रम में आकर पढ़ाई करता था, रात में रहता था और मुझसे कहता था, सबेरे उठा देंगे, मैं ध्यान करूँगा। वह सोते समय तकिया पर रामकृष्ण नाम लिख कर सोता था, मैं तो उसे लेकर मतवाला हो गया था। इसके बाद मैं चला गया। वापस आकर मैंने देखा कि कुसंग में पड़ कर, वह बिलकुल नष्ट हो गया है। एकदिन वह आया। मैं ही बात-बात में कुछ कहा था। उसने घर जाकर एक पोस्टकार्ड लिखा, आपने मेरे ऊपर कटाक्ष किया है। जैसे ही वह रामकृष्ण-भाव से हटा, वैसे ही मेरा स्नेह भी चला गया। **(क्रमशः)**

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (८)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

अब आत्मतत्त्व को कैसे समझाएँगे? उसकी न कोई जाति है, न गुण है और न किसी प्रकार की क्रिया है। इसीलिए हम उसको समझा नहीं सकते। जैसे एक विशिष्ट गाय है। उस गाय का मुझे वर्णन करना है। तो जाति के माध्यम से उसे अलग कर दिया कि वह भैंस नहीं है, घोड़ा नहीं है, वह गाय-जाति की है। गाय-जाति में असंख्य गायें हैं, तो उसे कैसे बतायें? तब कहा कि उसका रंग लाल है या उसमें धारी है। इस प्रकार से उसको बताने की चेष्टा की। ऐसी भी कई गाये हैं, लेकिन यह गाय विशिष्ट क्रिया करती है और उस विशिष्ट क्रिया के माध्यम से हम उस गाय को समझाते हैं। ऐसे ही व्यक्ति को भी समझाते हैं।

किन्तु आत्मतत्त्व को समझाने के लिए ये तीनों उदाहरण नहीं चलते। इसीलिए कहा गया कि आत्मतत्त्व को समझना बड़ा कठिन है। परन्तु गुरुजी ने यह भी कहा है कि वह आँखों की आँख, कानों का कान, प्राणों का प्राण, मन का मन, वाणी की वाणी है और वह शिष्य इसका चिन्तन कर रहा है। उसे ऐसा लगा कि उसने आत्मतत्त्व को पा लिया है। वह गुरु के पास आता है, तो गुरुजी पूछते हैं – वत्स ! क्या तुमने साधना की? क्या चिन्तन किया? क्या विचार किया? शिष्य ने कहा – हाँ गुरुजी ! मैंने विचार किया। तब गुरूजी ने कहा, ठीक है, अब बताओ कि आत्मतत्त्व कैसा है? शिष्य ने बताना शुरू किया, तो गुरुजी उसे वहीं रोक देते हैं। कहते हैं –

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनम्। त्वम् वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्। २/१

बहुत विलक्षण बात है। मानो यहाँ पर आत्मज्ञान का निकष है, उसकी कसौटी है। आत्मज्ञान को कसौटी पर कसा जा रहा है। यदि तू ऐसा समझता है कि तूने आत्मतत्त्व को सुवेदेति, अच्छी तरह से जान लिया है, तो दहरमेवापि - तू अत्यन्त थोड़ा ही, अल्प ही जानता है। नूनम् त्वम् वेत्थ ब्रह्मणो रूपं – सचमुच में तू ब्रह्म के अत्यल्प रूप को ही जानता है, यह कहा गया। इसका क्या अर्थ है? इसे समझाने के लिये श्रीरामकृष्ण एक उदाहरण देते थे।

पिता ने अपने दो पुत्रों को आत्मतत्त्व के ज्ञान के अध्ययन हेतु गुरुजी के पास भेजा। उनके दोनों पुत्र पढ़कर आ गये। पिता ने बड़े से पूछा – क्या गुरुजी ने तुम्हें सब कुछ पढ़ा दिया? लड़का बोला, जी, पढ़ा दिया। बोलो तो ब्रह्म कैसा है? बड़े लड़के ने कहना शुरू किया। पिताजी ने कहा, ठीक है। अब पिताजी ने दूसरे छोटे पुत्र से पूछा – क्या तुम्हें भी गुरुजी ने सब कुछ पढ़ाया है? छोटे लड़के ने 'हाँ' कहा। पिताजी ने कहा, बताओ, ब्रह्म कैसा है? छोटा लड़का मौन रहा, बोल ही नहीं पा रहा था। पिता ने छोटे पुत्र से कहा कि तूने ही ठीक-ठीक ब्रह्म को समझा है। क्योंकि वह ब्रह्म वाणी का विषय नहीं है और जो लड़का बताये जा रहा है कि मैंने ब्रह्म को ऐसा जाना है, उसने ठीक से नहीं जाना है, अत्यल्प जाना है।

जो तत्त्व वाणी का विषय ही नहीं है, उसको मैं कैसे बता सकता हूँ? मैं किसी बाहर की वस्तु को बता सकता हूँ, लेकिन ब्रह्म को नहीं। वह जाति, गुण और क्रिया से भिन्न है। उसे ज्ञान की प्रक्रिया और प्रमाणों से नहीं बताया जा सकता। वह अनुभूति का विषय है। लोग उसे नेति-नेति 'यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है' कहकर समझाने की चेष्टा करते हैं। यहाँ पर यही बताया जा रहा है - यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनम्। त्वम् वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्।

इन्द्रियों को भी संस्कृत साहित्य में देव कहा गया है। तो ब्रह्म का जो रूप तेरे भीतर है, ब्रह्म का जो रूप इन्द्रियों के माध्यम से झलकता है, प्रकाशित होता है, अरे वह सब तो अल्प रूप है। वह विचारणीय है। मैंने जो कहा कि वह आँखों का आँख है, कानों का कान है, तो वह तुम्हें एक संकेत देने के लिए कहा है। वह अल्प रूप है। वत्स ! तूने अभी भी नहीं जाना है।

मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् – मुझे तो ऐसा लगता है कि अभी तुझे मीमांसा करनी चाहिए। तू जा, फिर से

ध्यान कर।

उपनिषद में विरोचन और इन्द्र की छन्दों में बड़ी सुन्दर कथा है। विरोचन और इन्द्र ये दोनों प्रजापति के पुत्र थे। इन्द्र देवताओं के राजा थे और विरोचन असुरों के राजा थे। दोनों में छद्म विवाद चलता रहता था। इन दोनों ने सुना कि पिताजी ने ऐसा कहा है कि जो आत्मतत्त्व को जान लेता है, वह सब का ज्ञाता हो जाता है। समस्त संसार पर उसका प्रभुत्व हो जाता है, तो चलो आत्मतत्त्व को जान लें। ऐसा सोचकर विरोचन और इन्द्र दोनों प्रजापित के पास जाते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है, दोनों तेज कदमों से जाते हैं और यह चेष्टा करते हैं कि दूसरा न जाने। विरोचन कोशिश करता है, इन्द्र को पता न चले, मैं पहले पहुँच जाऊँ, ताकि मैं जगत पर शासन कर सकूँ। इन्द्र को ऐसा लगता है कि मैं पहले पहुँच जाऊँ ताकि विरोचन से पहले मुझे यह ज्ञान अधिगत हो जाय। जो हो, दोनों ने आकर प्रजापति को प्रणाम किया। प्रजापति ने पूछा, कहो, किस उद्देश्य से आये हो? दोनों ने कहा – पिताजी ! हमने ऐसा सुना है, आपने कहा है कि आत्मतत्त्व जान लेने से मनुष्य सब कुछ जान लेता है, सब पर विजय प्राप्त करता है, संसार का शासन करने लगता है, क्या यह सत्य है?

प्रजापति ने कहा, हाँ ! यह सत्य है। हम आत्मज्ञान की प्रार्थना करने के लिये आपके पास आये हैं। कथा कहती है कि प्रजापति ने कहा, ठीक है, तुम दोनों को मैं आत्मज्ञान दूँगा, पर तुम लोग यहाँ आश्रमवास करो, आश्रम के नियमों का पालन करो, ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करो, बत्तीस वर्ष तक रहो, उसके पश्चात् मैं तुम्हें आत्मज्ञान का उपदेश दूँगा।

बत्तीस वर्ष बीत गये। उसके बाद दोनों ने आकर कहा – पिताजी ! अब आत्मज्ञान का उपदेश कीजिए। प्रजापति ने कहा, ठीक है, सुनो – **य एषोऽक्षिणी पुरुषो दृष्यत एष आत्मेति होवाच**। अर्थात् यह जो आँखों में पुरुष दिखाई देता है, वही आत्मा है। पहले तो ये समझ नहीं पाये कि यह क्या होता है, यह आत्मतत्त्व कैसा है। फिर पिता प्रजापति ने कहा – ठीक है, तुम सरोवर में जाकर अपना मुख देखो। दोनों देखकर के आए। प्रजापति ने पूछा, तुम दोनों ने क्या देखा? तो दोनों ने कहा – हमने ऐसी बढ़ी हुई दाढ़ी देखी। हम इस प्रकार के कपड़े पहने हुए है, ऐसा हमने देखा। फिर प्रजापित ने कहा, जाओ, दाढ़ी साफ कर लो, आभूषण पहन लो और फिर से देखकर आओ। दोनों गये और देखकर आते हैं। प्रजापति पुनः पूछते हैं – तुमने क्या देखा? उनलोगों ने कहा, हमने देखा कि दाढ़ी साफ हो गयी है, चेहरा चमक रहा है आभूषण पहने हुए हैं और अच्छे वस्त्र पहने हुए हैं। प्रजापित ने हँसकर कहा, मैं फिर से दुहराता हूँ – य एषोऽक्षिणी पुरूषो दृष्यत – आँखों में जो पुरुष दिखाई देता है, या जल में जो पुरुष दिखाई देता है, वही आत्मा है। अब दोनों ने समझ लिया कि हमने आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लिया। दोनों के दोनों चल रहे हैं, विरोचन भी और इन्द्र भी। विरोचन को कोई शंका नहीं हुई। वह चला गया। विरोचन को लगा पिताजी ने हमें आत्मज्ञान की शिक्षा दी है कि आत्मा क्या है? पिताजी ने कहा कि जो आँखों में दिखाई देता है, वही है। आँखों में कौन दिखाई देता है? जब मैं किसी की आँखों में झाँकता हूँ, तो मैं तो अपने को ही देखता हूँ। यह शरीर दिखाई देता है। यह शरीर ही आत्मा है। जल में जब मैं देखता हूँ, तो कौन दिखाई देता है? मैं अपने को ही इस जल में देखता हूँ, इस शरीर को ही देखता हूँ, तो यह शरीर ही आत्मा है, ऐसा मानकर विरोचन चला गया और उसने असुरों में प्रचार किया – अरे यह शरीर ही आत्मा है, पिता ने इसी की शिक्षा दी है। इसलिए शरीर को पुष्ट करो। ऐसा कर वे देहवादी बने। राक्षस और असुर की यह कथा है।

इन्द्र भी जा रहा था। इन्द्र जाते-जाते सोचने लगा – यह कैसी बात है ! शरीर आत्मा कैसे हो सकता है? पिताजी ने जो कहा है, उससे भले ही यह ध्वनित होता है कि शरीर ही आत्मा है, परन्तु यह कैसे सम्भव है? मन ने एक प्रतिप्रश्न किया – इसलिए सम्भव नहीं है कि यदि शरीर ही आत्मा है, तो हाथ कट जाय, तो शरीर तो लूला हो गया, आत्मा भी लूला हो गया क्या? पैर कट जाय, तो शरीर तो लंगड़ा हो गया, तो आत्मा भी लंगड़ा हो गया क्या? नाक से जल निकलता है, तो क्या आत्मा ऐसा है जिसकी नाक से पानी निकलता है? आँख फूट जाती है, तो क्या वह काना हो सकता है? नहीं, नहीं, यह तो आत्मतत्त्व नहीं हो सकता, ऐसा विचार कर इन्द्र पुनः आश्रम लौट आया। प्रजापति ने इन्द्र को वापस देखकर पूछा – तुम तो आत्मतत्त्व को जानकर विदा लेकर चले गये थे। फिर से कैसे आये?

इन्द्र ने कहा, पिताजी आपने जो उपदेश दिया है, उसमें

मुझे एक हानि दिखाई देती है। क्या हानि दिखाई देती है? पहले तो मुझे लगा था यह शरीर ही आत्मतत्त्व है, पर शरीर आत्मा कैसे हो सकता है? उसने बताया कि शरीर लंगड़ा हो जाय, तो क्या आत्मा भी लंगड़ी हो जायेगी? यदि शरीर लूला हो जाय, तो क्या आत्मा भी लूली हो जाएगी? यदि नाक से जल बहने लगे, तो क्या हम कहेंगे कि आत्मा की नाक से जल बह रहा है? क्या ऐसा आत्मतत्त्व हो सकता है? कान के बहरे, आँख के अन्धे होने पर क्या आत्मा भी बहरी और कानी हो जायेगी। इसमें मुझे बड़ी हानि दिखाई दे रही है, यह शरीर आत्मतत्त्व नहीं हो सकता।

प्रजापति ने हँसकर कहा – ठीक है, तुममें जिज्ञासा है, तुम बत्तीस वर्ष तक और रहो। साधना करो। उसके बाद आना। बत्तीस वर्ष के उपरान्त इन्द्र ने पुन: आत्मतत्त्व का उपदेश माँगा। प्रजापति ने कहा, देखो ! जो स्वप्न में पुरुष दिखाई देता है, वही आत्मा है। अब इन्द्र विदा लेकर चला और सोचने लगा, पिताजी ने कहा कि स्वप्न में जो दिखाई देता है, वह ब्रह्म है। स्वप्न में क्या दिखाई देता है? स्वप्न में जो दिखाई देता है, वह आत्मा कैसे हो सकता है? उस समय मैंने पिताजी के सामने कैसे इसे ग्रहण कर लिया? मुझे शंका क्यों नहीं हुई? वह चलते चलते विचार कर रहा है – स्वप्न में जो दिखाई दे रहा है, वह आत्मा कैसे होगा? स्वप्न में भूत दौड़ाता है, तो वह भागता है, स्वप्न में वह रुदन करता है, चिल्लाता है, दु:ख का भोग करता है। इसको आत्मा मानने में बड़ी हानि है। पुन: वापस आ गया। पिताजी ने पूछा, इन्द्र ! तुम फिर से वापस लौट आये? हाँ पिताजी ! स्वप्न में जो दिखाई देता है, उसको आत्मा मानने में बड़ी बाधा है। क्या बाधा है? इन्द्र ने बताया – स्वप्न में भूत के दौड़ाने पर भय से वह काँपता हुआ भागता है, रोता है, दुख का अनुभव करता है, तो ऐसा दु:ख का अनुभव करनेवाला, भय से काँपनेवाला यह आत्मा कैसे हो सकता है? आत्मा के लिए कहा गया है कि वह अजर है, अमर है, अभय है। मैं तो स्वप्न में दीखनेवाले पुरूष को आत्मतत्त्व नहीं मान सकता।

प्रजापति ने पुन: हँसकर कहा – ठीक है, तुम बत्तीस साल और रहो, फिर उसके बाद तुम्हें शिक्षा दूँगा। इन्द्र बत्तीस साल रहकर जाता है और प्रजापति ने फिर शिक्षा दी। क्या शिक्षा दी? उन्होंने कहा, जो सुषुप्ति में, घोर निद्रा की अवस्था में दिखाई देता है, वह आत्मा है। इन्द्र विदा लेकर चल दिया। किन्तु रास्ते में विचार आया, घोर सुषुप्ति में तो कुछ नहीं दिखाई देता है, वहाँ तो अज्ञान का ही अनुभव है। वह ऐसा अज्ञान है कि बड़ा सम्राट, बड़ा अहंकारी को घोर निद्रा की अवस्था में यदि कुत्ता आकर उसे चाटने लगे, तो भी बोध नहीं होता है। जो अज्ञान से ढँका हुआ है, वह आत्मतत्त्व नहीं हो सकता।

इन्द्र ने वापस आकर पिता के सामने अपनी बात रखी। पिता ने कहा – ठीक है, तुम पाँच साल और रहो। इन्द्र रहता है। एक सौ एक साल रहने के बाद, फिर पिता ने समझा दिया कि आत्मतत्त्व क्या है।

यहाँ पर जो समझाने का क्रम है, हम क्रम में भिन्नता पाते हैं, पर समझाने की विधि एक ही प्रकार की है कि कितनी साधना उसने की।

यहाँ पर गुरु शिष्य से कह रहे हैं कि तू फिर से एक बार मीमांसा कर, पुन: एक बार विचार कर, ध्यान कर, साधना कर, चिन्तन कर। इसके बाद शिष्य ने कुछ वर्षों तक साधना की और आकर कहता है, गुरुजी ! मन्ये विदितम् – अब मुझे लगता है कि शायद मैंने जान लिया है। इसका जो उत्तर गुरुजी देते हैं, हम लोग कल देखेंगे, आज यहीं पर अपनी वाणी को विराम देते हैं। हरि ॐ तत् सत्।

(क्रमश:)

उत्तर भारत से एक महान पण्डित स्वामी विवेकानन्द के साथ वेदान्त पर वार्तालाप करने आए हुए थे। उस समय सारा देश अकाल-ग्रस्त था। इसलिए स्वामीजी का मन बहुत दुखी था। उस पण्डित के साथ वेदान्त पर विचार करने की उनकी इच्छा न हुई। उन्होंने उनसे कहा, ''पण्डितजी, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, पहले उसके निवारण की चेष्टा कीजिए। एक मुट्ठी अन्न के लिए आपके देशवासी जो हृदय विदारक आर्तनाद कर रहे हैं, उसके प्रतिकार की चेष्टा कीजिए। उसके बाद मेरे साथ वेदान्त पर विचार करने आइएगा। सैकड़ों भूख से अकाल-मृत्यु को प्राप्त कर रहे हैं। उनकी रक्षा हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर देना – यही वेदान्त धर्म का सार है।

साधक-जीवन कैसा हो? (८)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनलेखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

प्रवचन - ३

कल हम अन्तर्प्रकृति की चर्चा कर रहे थे। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि साधक को जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ेगा। दृष्टिकोण में परिवर्तन विचारों से होता है। विचारों से धारणाएँ बनती हैं और धारणाएँ दृष्टिकोण में परिवर्तन करती हैं। एक बाहर का संसार है और एक भीतर का संसार है – बाह्यवृत्ति और अन्तर्वृत्ति। पहले बाह्यवृत्ति पर चर्चा हुई। अब अन्तर्वृत्ति पर, भीतर के संसार पर चर्चा चल रही है। निरन्तर गतिशील इस जीवन की यात्रा मृत्यु में ही समाप्त होती है। हमारा आन्तरिक जीवन ही, वास्तविक जीवन है। वह शाश्वत है। शरीर की मृत्यु के साथ उसकी मृत्यु नहीं होती।

हम शरीर से तो परिचित हैं। किन्तु मन से उतने परिचित नहीं हैं। वस्तुत: हमारा व्यक्तित्व हमारा मन ही है। शरीर तो उसका थोड़ा-सा अंश है। यद्यपि ये परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। शरीर मन को प्रभावित करता है और मन शरीर को प्रभावित करता है। किन्तु अन्तत: मन ही मुख्य है। मन ही शरीर को चलाता है। हमारी मृत्यु के बाद भी संसार के जो वर्तमान संस्कार मन में हैं, वे हमारे सूक्ष्म शरीर के साथ जाते हैं। आप लोगों ने 'सूक्ष्म शरीर' का नाम सुना होगा। सूक्ष्म शरीर और कुछ नहीं, हमारा मन ही है। मन हमारी आँखों से दिखता नहीं है। वह अदृश्य है। जैसे हवा आँखों से दिखती नहीं है, पर हवा है। उसी प्रकार मन हमारी आँखों से दिखता नहीं है, पर हम उसका अनुभव करते हैं। हमारे जीवन के अधिकांश व्यवहार मन के कारण ही होते हैं। अच्छा-बुरा, सुख-दुख मन में ही लगता है। मन के बाहर कुछ नहीं है। आन्तरिक जीवन का अर्थ होता है मन। व्यावहारिक दृष्टि से कहना हो, तो आन्तरिक जीवन को जानने के लिये, आन्तरिक यात्रा करने के लिये मन से परिचित होना पड़ता है। अपने मन से जब हम परिचित होंगे, तभी हमारी आन्तरिक यात्रा प्रारम्भ होगी। हमारे मन में क्या है, इसे हमको और भगवान को छोड़कर दूसरा कोई नहीं जानता है, किन्तु हम सामान्य लोगों का दुर्भाग्य यह है कि हम अपने मन को जान नहीं पाते हैं या अधिकांशत: जानने का प्रयास नहीं करते हैं। यह बात पहले पहल समझनी कठिन होती है, किन्तु एक बार समझ जायँ, तो उसे नियन्त्रित करना आसान हो जाता है। जैसे मन में लोभ आया, क्रोध आया, ईर्ष्या हुई या कोई भी भाव आया, तो हम सामान्य लोग जब वह भाव प्रगट हो जाता है, तब हम उसे जान पाते हैं, उसके पहले नहीं। जब वह प्रगट हो चुका रहता है, तब उसे रोकना कठिन हो जाता है। किन्तु जो साधक-साधिकाएँ हैं, जिन्होंने मन को समझने का निरन्तर प्रयास किया है, एक दिन उनके जीवन में ऐसी क्षमता आ जाती है कि लोभ के प्रकाशित होने के पहले ही वे उसे समझ जाते हैं। उसे मूल में ही पकड़ लेते हैं। जब यह पकड़ने की क्षमता आ जाती है, तब उसका नियन्त्रण तुलनात्मक दृष्टि से सहज हो जाता है। अन्तर्यात्रा का अर्थ है अपने मन को समझने और जानने का प्रयत्न करना। जब हम अपने मन को समझने का प्रयत्न करने लगेंगे, तब आन्तरिक यात्रा शुरू होगी।

मन हमें बाहर नहीं दिखता, उसका प्रभाव ही दीख पड़ता है। मन को जानने का मन ही एक उपाय है। इस ओर कृपया ध्यान रखें, मन के द्वारा ही मन को जाना जा सकता है। इसे जानने का और कोई उपाय नहीं है। मान लीजिये आप यहाँ आने के पूर्व दर्पण के सामने खड़े होकर दाढ़ी बना रहे हैं, मेरी बेटियाँ-बहनें बाल ठीक कर रहीं हैं, अपना चेहरा देख रही हैं, अपने कपड़े ठीक कर रही हैं, तो आईने में आपका जो प्रतिबिम्ब दिख रहा है, उसे तो आप देख पा रहे हैं, पर मन में जो विचार, जो भाव उठ रहे हैं, क्या आप उन्हें आईने में देख पाते हैं? नहीं देख

पाते हैं। किन्तु आप उसका अनुभव करते हैं, आप जिसका अनुभव करते हैं, वही मन है। यही मन हमारे जीवन का संचालन करता है। यह आन्तरिक स्थिति है। अन्तर्यात्रा तब प्रारम्भ होती है, जब हम चाहे बहुत कम मात्रा में ही क्यों न हो, यह अनुभव करना या जानना प्रारम्भ करते हैं कि हमारा मन क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता है। असंख्य विचार मन में उठते रहते हैं, उस ओर हम ध्यान नहीं देते। ध्यान देना भी नहीं चाहिए। वे आते-जाते रहते हैं। जिन विचारों से हम परिचित हो जाते हैं, जो विचार हमको आकर्षित करते हैं या हमारे मन का ध्यान जिन विचारों के प्रति जाता है, उसको समझना चाहिए। एक उदाहरण से इसे समझें।

मान लीजिये आप किसी मेले में गए हैं। जहाँ बहुत भीड़-भाड़ है। किसी मॉल में ५-७ सौ या हजार आदमी हैं। हमारा शरीर ठीक है। हमारी इन्द्रियाँ ठीक हैं। आँखें देख रही हैं। लोग आ-जा रहे हैं। किन्तु उधर हमारा ध्यान नहीं जाता है। लेकिन अचानक आप देखते हैं कि आपके परिचित मित्र जा रहे हैं, तो उधर देखते हैं। हमारी बेटियाँ जब अपने स्कूल में पढ़ी किसी सहेली को देखती हैं, जो उससे दस वर्ष बाद वहाँ मिल रही हैं, तो उसका ध्यान उधर चला जायेगा। वहाँ दूसरी बहुत-सी महिलाएँ थीं, उधर उसका ध्यान नहीं गया, किन्तु उसको देखते ही वह कह उठेगी – अरे शालु ! अरे शालिनी ! आज तुम कहाँ हो? और आपकी उससे बातचीत होने लगी। शालुताई के पहले भी तो सैकड़ों स्त्रियाँ आपके सामने से गयी थीं, किन्तु उन पर आपका ध्यान नहीं गया। इधर क्यों ध्यान गया? क्योंकि मन में शालुताई की छाप थी, जो उनको देखकर एकदम सामने आ गयी। वह मन में छिपी हुई थी, प्रगट हो गई। उसी प्रकार आपका कोई ऐसा मित्र है। जब आप नौकरी करते थे, तब वह आपके साथ था। वह बहुत दुष्ट था। उसने आपको बहुत कष्ट दिया। आपको बहुत परेशान किया। अब आप दोनों ने अवकाश प्राप्त कर लिया है। दो-चार साल बाद अचानक वह मेले में दिखा, तो देखते ही आपके मन में आया – जरा इसे देखो ! अब इसे कुत्ता भी नहीं पूछता है ! ऐसी अकड़ थी आपके मन में ! ऐसा होता है कि नहीं? उसके पहले का व्यवहार कम्प्यूटर की तरह आपके मन में स्थायी रूप से रिकार्ड था, इसलिये वहाँ बिना प्रसंग के भी आपके मन में उसको देखते ही सारी बातें याद आ गयीं कि उसने मुझे बहुत परेशान किया था। अब उसे देखकर भी उसको नमस्कार नहीं करूँगा। उससे हाथ नहीं मिलाऊँगा। उससे बात नहीं करूँगा। जैसे मैं उससे बिल्कुल अपरिचित हूँ। उसे शत्रुवत समझता हूँ आदि। किन्तु बाहर तो कुछ नहीं हुआ, जो कुछ हुआ वह भीतर ही हुआ। आपके भीतर ऐसी बहुत-सी चीजें जमीं हुई हैं। शास्त्रीय भाषा में उसे राग और द्वेष कहते हैं। राग माने चिपकाव – आसक्ति, प्रेम, स्नेह, मिलन। आध्यात्मिक प्रेम नहीं, सामान्य सांसारिक प्रेम। द्वेष जिसका अर्थ हम सभी जानते हैं। राग और द्वेष के प्रभाव, उनकी छाप हमारे मन में है। ये सभी सूक्ष्म शरीर मन में संचित हैं। इसे हम जानें या न जानें, मानें या न मानें, किन्तु वे हममें हैं।

जब हम अन्तर्यात्रा प्रारम्भ करेंगे, थोड़ी देर बैठकर विचार करेंगे, परस्पर चर्चा करेंगे, तो धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता जाएगा कि मन को जानना ही अन्तर्यात्रा है। हमारा मन कितना हमारे वश में है, ये तो दूसरी बात है। अभी बाहर की यात्रा से हमने अवकाश ले लिया है। अब उधर जाने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। बाहर जो है, उससे हम सन्तुष्ट हैं। यह सब ठीक है। किन्तु हमारी मन की यात्रा अभी प्रारम्भ हुई है।

भीतर की यात्रा में राग-द्वेष से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के भाव आते-जाते रहते हैं। जैसे सूर्य उदित होता है और अस्त भी होता है। उसी प्रकार हमारे मन में भाव आते हैं और जाते हैं। उनमें से राग-द्वेष के कुछ भाव बहुत लम्बे समय तक रह जाते हैं। द्वेष का भाव जितना लम्बा होता है, उतनी अधिक पीड़ा देता रहता है। राग भी जो मोह में बदल जाता है, उसकी अन्य विभिन्न प्रकार की गतियाँ हैं। उसकी चर्चा अभी नहीं कर पाऊँगा।

मन में राग-द्वेष दोनों हैं और दोनों ही आन्तरिक जीवन की बाधायें हैं। साधक या साधिका का अर्थ ही है कि वे बाहर से भीतर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमें अपने भीतर जाना है। आपके मार्गदर्शक-गुरुओं ने आपको बताया होगा कि हृदय में इष्ट का चिन्तन करो, भीतर जाने का प्रयत्न करो। भीतर जाने का क्या उपाय है? आइये उसे हम समझने का प्रयास करें। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

५९. देवर्षि नारद और दो साधक

नारद एक महान् देवर्षि थे। जैसे मनुष्यों में ऋषि या बड़े-बड़े योगी रहते हैं, वैसे ही देवताओं में भी बड़े-बड़े योगी हुआ करते हैं। नारद भी एक बड़े अच्छे और अत्यन्त महान् योगी थे। वे सर्वत्र भ्रमण करते रहते थे। एक दिन एक वन से होकर जाते हुए उन्होंने देखा कि एक मनुष्य, न जाने कितने समय से एक ही स्थान पर बैठा हुआ है और इतने गहरे ध्यान में डूबा हुआ है कि दीमकों ने उसके चारों ओर एक विशाल बाँबी बना ली है।

उसने नारद से पूछा, "महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं?"

नारदजी ने उत्तर दिया, "मैं वैकुण्ठ जा रहा हूँ।"

वह बोला, "ओह, आप जरा भगवान से पूछकर आइयेगा कि वे मुझ पर कब कृपा करेंगे, मुझे कब मुक्ति मिलेगी?"

कुछ दूर और जाने पर नारदजी ने एक अन्य व्यक्ति को देखा। वह नाचते-गाते हुए उछल-कूद रहा था। उसने भी पूछा, "नारदजी, आप कहाँ जा रहे हैं?" उसकी आवाज तथा हाव-भाव उन्मत्त के समान थे।

नारदजी उसे भी बताया कि वे वैकुण्ठ जा रहे हैं।

उसने भी कहा, "तो भगवान से पूछते आइयेगा कि मैं कब मुक्त होऊँगा।"

नारदजी अपने मार्ग पर चलते गये। कुछ दिनों बाद जब वे उसी रास्ते से लौट रहे थे, तो उन्होंने फिर दीमक की बाँबी में बैठे उस ध्यान कर रहे योगी को देखा। उसने पूछा, "महाराज, क्या आपने मेरी बात पूछी थी?"

नारदजी बोले, "हाँ, पूछी थी।"

योगी ने पूछा, "उन्होंने क्या कहा?"

नारदजी बोले, "भगवान ने बताया कि मुक्ति पाने के लिए तुम्हें और भी चार जन्म लगेंगे।"

इस पर वह योगी रोना-धोना करने लगा और कहने लगा, "मैंने इतना ध्यान किया है कि मेरे चारों ओर दीमक की बाँबी बन गयी है, तो भी मुझे चार जन्म और लेने पड़ेंगे?"

इसके बाद नारदजी दूसरे व्यक्ति के पास पहुँचे। उसने भी प्रश्न किया, "क्या आपने प्रभु से मेरी बात पूछी थी?"

नारदजी बोले, "हाँ, उन्होंने बताया कि 'तुम्हारे सामने जो इमली का पेड़ है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतनी बार तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा, तब कहीं तुम्हारी मुक्ति होगी।"

यह सुनकर वह व्यक्ति खुशी से नाचने लगा और बोला, "मैं इतने अल्प समय में ही मुक्ति प्राप्त करूँगा!"

तभी आकाशवाणी हुई, "वत्स, तुम इसी क्षण मुक्ति प्राप्त करोगे।"

यह उसके अध्यवसाय का पुरस्कार था। वह इतने जन्म साधना करने के लिए तैयार था। कुछ भी उसे हताश नहीं कर सका था। परन्तु वह पहला व्यक्ति चार जन्मों की ही बात सुनकर घबरा गया था।

जो व्यक्ति मुक्ति के लिए सैकड़ों युगों तक प्रतीक्षा करने को तैयार था, उसी के समान अध्यवसाय-सम्पन्न होने पर सर्वोच्च फल की प्राप्ति होती है। (१/१०५-०६)

६०. गोहत्या का पाप किसे लगेगा

एक आदमी ने बड़ा सुन्दर बगीचा लगा रखा था। एक दिन उस बगीचे में एक गाय घुस गयी और उसने अनेक पौधों को नुकसान पहुँचाया। यह देखकर वह आदमी बड़ा क्रोधित हुआ और उसने उस गाय को इतना मारा कि वह मर गयी। इस गोहत्या के पाप से बचने के लिये उसने एक युक्ति ढूँढ़ निकाली। उसने सोचा, "यह पाप तो मेरे हाथ ने किया है और चूँकि हाथ के देवता इन्द्र हैं, अत: इस पाप का फल इन्द्र को ही मिलना चाहिये।"

इन्द्र उसकी चालाकी को समझ गये और एक ब्राह्मण का रूप धारण करके उसके पास आ पहुँचे। वे उस आदमी के सामने जाकर बगीचे के हर हिस्से की प्रशंसा करने लगे और पूछने लगे कि यह सब किसने बनाया है। वह व्यक्ति बगीचे की हर चीज के लिये श्रेय लेने लगा। अन्त में इन्द्र ने मरी हुई गाय को दिखाते हुए पूछा, "इस गाय को किसने मारा?" वह बोला, "इन्द्र ने।" सुनकर इन्द्र उसकी चालाकी का पर्दाफाश करते हुए बोले, "इस बगीचे का सब कुछ तुम्हारा किया हुआ है; बस, केवल इस गोहत्या के लिये ही इन्द्र उत्तरदायी है, है न?" (६/८९)

क्रान्तिकारियों की वात्सल्यमयी माँ सारदा

स्वामी स्वात्मानन्दपुरी, जबलपुर

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की लीला सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी (१८५३-१९२०), जो विश्वव्यापी रामकृष्ण मठ-मिशन एवं संयुक्त आश्रमों तथा भक्तों की आदर्श, रक्षिका और प्रेममयी माता हैं, वे विश्व की विभिन्न सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक सेवा की आदर्श भी हैं। ग्रामीण, अनपढ़, पर्दे एवं घूंघट की आड़ में रहनेवाली सारदा जगत जननी के रूप में अथवा विश्ववन्द्या रूप में क्यों पूजी जाती है? उनकी लौकिक लीला को विभिन्न दृष्टिकोणों से बंगला और अंग्रेजी साहित्यकारों ने उनकी विस्तृत जीवनी से लेकर संस्मरण, पत्राचार, वार्तालाप सम्बन्धी अनेकों सद्ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, जो रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य के अथाह सागर में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत लेख में हम श्रीमाँ सारदा को एक नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करेंगे, जिससे उनके जीवन में एक नया आयाम जोड़ा जा सके।

हम देखते हैं, १० वर्ष की आयु से ही श्रीमाँ सारदा देवी की देश-सेवा प्रारम्भ होती है। अंग्रेजों द्वारा बंगाल के क्रान्तिकारियों के दमन हेतु बंगाल में अकाल उत्पन्न करने के कारण सन् १८६४ में बंगाल के गाँव-गाँव में अन्न का अभाव हो गया। इससे श्रीमाँ सारदा के पैतृक गाँव जयरामबाटी में हजारों गरीबों को कई दिनों तक भूखे सो जाना पड़ता था। इनके पिता श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय यद्यपि दीन ब्राह्मण थे, पर भगवती की कृपा से सारे वर्ष का धान अपने खेत में उत्पन्न कर संचित रखे हुए थे। वे अपने घर में प्रतिदिन इन भूखे-प्यासों को खिचड़ी बनाकर खिलाते थे। नन्हीं सारदा अपने छोटे हाथों से पंखा झलकर परोसी गई गरम खिचड़ी को ठंडा करती और भगवती से जनता के कष्ट दूर होने की प्रार्थना करती थी।

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव एवं श्रीमाँ सारदा देवी का विलक्षण विशुद्ध दिव्य जीवन था। अवतार-शक्ति का दिव्य जीवन भावी युग के लिये पथ प्रदर्शक होता है। आज विज्ञान के युग में सनातन धर्म में प्रतिपादित गृहस्थ जीवन में आत्मसंयम की महत्ता को भूलकर लोग अधिकाधिक आदर्शहीन जीवन जी रहे हैं, जिसे हम नित्य देख रहे हैं। माँ का आदर्शमय जीवन सबको प्रेरित कर सकता है। एकबार श्रीरामकृष्ण देव ने श्रीमाँ से कहा था, भविष्य में रत्न तुल्य अनगिनत संतानें तुम्हें 'माँ' कहकर कानों को सदैव झंकृत करेंगी। तुम्हें उन सबकी देखभाल करनी है।

भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानन्द की विदेशी शिष्या थी। उसने एक दिन माँ से कहा – "माँ, श्रीरामकृष्ण देव की भविष्यवाणी सार्थक होती दीख रही है। अब कई पढ़े-लिखे क्रान्तिकारी युवक अंग्रेजों के अत्याचार से बचकर कुछ आशीर्वाद लेने, कुछ शान्तिसुलभ मातृ-वात्सल्य प्राप्त करने एवं कुछ आपके संरक्षण में भावी संन्यासी बनने के लिए आपकी शरण में आ रहे हैं।" श्रीमाँ ने निवेदिता की बातों का अनुमोदन किया।

हम देखते हैं, ये क्रान्तिकारी जिनमें सुभाष बोस, अरविन्द घोष, 'बाघा' यतीन (यतीन्द्रनाथ मुखर्जी), विपिन चन्द्रपाल, विनय, बादल, दिनेश, खुदीराम बोस, सूर्य सेन, मानवेन्द्र राय एवं सैकड़ों बंगाल के क्रान्तिकारी युवक स्वामी विवेकानन्द के अग्निमन्त्र रूपी वाणी से प्रभावित होकर मातृभूमि के स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़े थे एवं अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। अंग्रेजी सरकार के

विरोध के बाद भी उन क्रान्तिकारियों के भूमिगत होने के समय उनके पास आने पर श्रीमाँ ने सबको समुचित निर्देश दिया एवं उनके परिवारों की सहायता की। श्रीमाँ सारदा रामकृष्ण मठ एवं मिशन की संघ-जननी थीं। ब्रिटिश सरकार का गुप्तचर विभाग रामकृष्ण मिशन पर कड़ी निगरानी रखता था और वहाँ के संन्यासियों के सभी सेवामूलक कार्यों एवं विदेशों में दिए गए वेदान्त प्रवचनों की समीक्षा करता था।

२२ अप्रैल, १९१४ ई. में ब्रिटिश अफसर सी.ए. टेगार्ड के द्वारा सरकार के ४१ पृष्ठों के आलेख में लिखे टिप्पणी से पता चलता है, "स्वामीजी ने राजनीति से मिशन को अलग रखने का जो विचार प्रतिपादित किया है, इस पर सरकार को विश्वास नहीं करना चाहिए।" इसमें स्वामीजी के साहित्य से उद्धृत अंशों का संकलन कर दिखाया गया। स्वामी विवेकानन्द ब्रिटिश शासन के विरोधी थे। वे धन-धान्य सम्पन्न भारत की दुर्दशा का कारण ब्रिटिश शासन को ही समझते थे। स्वामीजी की वाणी का उद्देश्य भारत के नवयुवकों को जाग्रत करना था। इस सन्दर्भ में श्रीमाँ सारदा ने एकबार कहा था, नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) यदि जीवित होता, तो ब्रिटिश सरकार उसे जेल में डाल देती। इस आन्दोलन की प्रणेत्री भगिनी निवेदिता थी, जो श्रीमाँ सारदा की मुँहबोली बेटी 'खुकी' के रूप में जानी जाती थी। श्रीमाँ सारदा के साथ निवेदिता का घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्रीमाँ के आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन से बंगाल ही नहीं, अपितु भारतवर्ष में प्रथम बालिका विद्यालय 'निवेदिता स्कूल' की स्थापना निवेदिता ने कलकत्ते में की थी।

श्रीमाँ सारदा जगत जननी होने के कारण यद्यपि अंग्रेजों के विनाश की कल्पना नहीं करती थीं, क्योंकि वे भी उनकी ही संतान थे, पर वे अत्याचारी कुसन्तान थे, इसलिए उनके प्रति क्षोभ व्यक्त करती थीं। एकबार माँ के एक निरीह धार्मिक भक्त श्रीरामकृष्ण की पूजा, जप-ध्यान कर बाहर निकलते ही पुलिस उसे तुरन्त गिरफ्तार कर जेल ले गई। उन्हें प्रसाद खाने और पानी पीने तक का समय नहीं दिया। श्रीमाँ ने जब यह सुना, तो बड़े दुखे से बोलीं – "देखो उनका अन्याय ! मेरे अच्छे लड़के को बिना कारण पीड़ा दे रहे हैं, ठाकुर का प्रसाद भी नहीं खाने दिया, यह ब्रिटिश राज्य क्या और रह सकेगा?

माँ के त्यागी सन्तान स्वामी ज्ञानानन्द जी को मिथ्या सन्देह में पुलिस ने कटिहार में नजरबन्द रखा। तब श्रीमाँ कोआलपाड़ा में बीमार थीं। उनकी बीमारी की खबर पाकर ज्ञानानन्द जी उन्हें देखने छुपकर आ पहुँचे। कोआलपाड़ा आश्रम ब्रिटिश गुप्तचरों की कड़ी नजर में था। सभी ने उन्हें लौट जाने को कहा। श्रीमाँ ने इस पर अनिच्छा प्रकट की और बोलीं – जो होगा, वह ठाकुर की इच्छा से होगा, मेरा बच्चा यहीं मेरे पास रहेगा। कुछ दिनों बाद उसकी सुरक्षा के लिए उसके प्रस्थान के बारे में सहमत हुईं, किन्तु इस देश से ब्रिटिश सरकार के उच्छेद की कामना करने लगीं।

२ मई, १९०४ को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध घोषणा के अभियोग में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी अरविन्द घोष एवं उनके साथी अलीपुर जेल बमकाण्ड में गिरफ्तार हुए। उनके विरुद्ध विख्यात अलिपुर मामला आरम्भ हुआ, तब उनकी धर्मपत्नी मृणालिनी देवी अत्यन्त दुखित हो गईं। उस समय उनके अन्य क्रान्तिकारी मित्र देवव्रत वसु की बहन सुधीरा उन्हें माँ सारदा के पास ले गई। श्रीमाँ ने स्नेहपूर्वक उसे आलिंगन कर उसके आँसू पोंछकर कहा – 'दुखी मत होओ बेटी, दुखी होने से कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हारे पतिदेव भगवान पर पूर्ण आश्रित हैं, ऋषि तुल्य हैं। ठाकुर के आशीर्वाद से अतिशीघ्र निर्दोष होकर मुक्त हो जाएँगे।' माँ ने मृणालिनी देवी की मानसिक शान्ति के लिए उन्हें श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ने को कहा। माँ स्नेह से उन्हें 'बहू' कहती थीं। क्योंकि अरविन्द घोष को वे अपनी सन्तान समझती थीं। श्रीअरविन्द के पाण्डीचेरी जाने के बाद मृणालिनी देवी ने श्रीमाँ से मन्त्रदीक्षा ली। इसे पाण्डीचेरी में सुनकर श्रीअरविन्द ने कहा – "मैं जानकर प्रसन्न हुआ कि मृणालिनी ने इतना महान आध्यात्मिक आश्रय प्राप्त किया है।"

आन्दोलन के समय (१९०५-१९११) बहुत से तरुण क्रान्तिकारी बेलूड़ मठ आवागमन करते थे। परवर्ती काल में उनमें से कई ने रामकृष्ण मिशन में संन्यास ग्रहण कर मातृभूमि की सेवा की। श्रीमाँ सारदा से मन्त्र-दीक्षा प्राप्त क्रान्तिकारियों के कुछ नाम उल्लेखनीय हैं – श्री देवव्रत वसु (स्वामी प्रज्ञानन्द), शचीन्द्रनाथ सेन (स्वामी चिन्मयानन्द), नरेन्द्रनाथ सरकार (स्वामी सहजानन्द), प्रियनाथ दासगुप्त (स्वामी आत्मप्रकाशानन्द), सतीश दासगुप्त (स्वामी सत्यानन्द), राधिकामोहन गोस्वामी (स्वामी सुन्दरानन्द), धीरेन दास गुप्ता (स्वामी

सम्बुद्धानन्द), श्री अतुल गुहा (स्वामी अभयानन्द – भरत महाराज, बाद में जिनसे श्रीमती इन्दिरा गाँधी तक मार्गदर्शन पाती थीं और निताई दास (स्वामी बलदेवानन्द)।

१९०९ में मानिकतला बमकाण्ड के दो क्रान्तिकारी अभियुक्त मामले से बरी किये जाने पर देवव्रत वसु व शचीन्द्रनाथ सेन ने श्रीमाँ सारदा के अनुमोदन से रामकृष्ण संघ में आश्रय लिया। ब्रिटिश शासन की दमन नीति के बावजूद भी क्रान्तिकारियों को मठ में आश्रय प्रदान कितना विपत्तिजनक था, उसका सहज अनुमान किया जा सकता है। उनके ऊपर पुलिस की दृष्टि हमेशा गड़ी रहती थी। फिर भी माँ सारदा का स्नेह एवं सहानुभूति ही इन क्रान्तिकारियों की आशा का सम्बल था।

१९११ ई. के १२ दिसम्बर को ब्रिटिश सरकार ने बंगभंग निरस्त एवं भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली स्थानान्तरित करने का निश्चय किया। १३ दिसम्बर को जब लार्ड गवर्नर हार्डिन्ज विशाल शोभायात्रा के साथ राजधानी में प्रवेश कर रहे थे, तब महान क्रान्तिकारी नायक रासबिहारी बसु के निर्देश में श्री बसन्त विश्वास ने उन पर बम फेंका। लार्ड हार्डिन्ज गम्भीर रूप से घायल हुए। श्री माँ तब काशी में थीं। इसके पूर्व जो क्रान्तिकारी बमकांड से सम्बन्धित थे, पुलिस ने उनकी खोज प्रारम्भ की। मानिकतला बमकांड से मुक्त देवव्रत जो अब मिशन के संन्यासी थे, की भी खोज की गई, तब अन्य साधुओं ने उन्हें अन्यत्र चले जाने की सलाह दी। श्री माँ ने निर्भय वाणी से कहा ''क्या हुआ? वह तो अब कुछ नहीं करता, क्यों तुम लोग डर रहे हो? उसका बाल भी बाँका यह अत्याचारी सरकार नहीं कर सकती।''

स्वामी प्रज्ञानन्द की बहन सुधीरा देवी निवेदिता विद्यालय में शिक्षिका थीं। पहले वे भी क्रान्तिकारी कार्यों से जुड़ी थीं। वे भी श्रीमाँ से मन्त्र दीक्षा प्राप्त की थीं। १९१२ ई. में क्रान्तिकारी प्रियनाथ दासगुप्त (स्वामी आत्मप्रकाशानन्द) ने श्रीमाँ के उद्बोधन भवन में शरण ली और श्रीमाँ से मन्त्र दीक्षा प्राप्त की थी। पुलिस की सूक्ष्म दृष्टि पड़ते ही डेढ़ वर्ष तक वे उद्बोधन छोड़कर अज्ञात स्थान पर चले गए। जाते समय श्रीमाँ ने अभयवाणी दी, 'डरो मत, भगवान सब ठीक कर देंगे।'

श्रीमाँ सारदा के प्रभाव से प्रफुल्लमुखी वसु स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रुप से जुड़ी थीं। वे बारिशाल (अब बांगला देश का जिला) के कांग्रेस कार्यकर्ता योगीन्द्र गुहठाकुरता की कन्या थीं। ३ वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ और २८ दिन बाद वे विधवा हो गईं। १९१४ ई. को प्रफुल्लमुखी भावविह्वल अवस्था में श्रीमाँ के पास आती हैं। तब उनकी उम्र १६ वर्ष की थी। उन्हें देखकर श्रीमाँ कह उठी, ''इतनी निराश क्यों हो बेटी, तुम तो हीन अबला नहीं हो, भगवान तुमसे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कराएँगे।'' श्रीमाँ की भविष्यवाणी विफल नहीं हुई। प्रफुल्लमुखी कालान्तर में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन एवं स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न कार्यों में सक्रिय रूप से सहयोग कर प्रसिद्ध हुईं। बंगाल के विभिन्न जेलों में कई बार उन्हें जेलयातना सहनी पड़ी। स्वाधीनता के पश्चात् वे कुन्निला (पूर्व पाकिस्तान) में 'सारदा देवी महिला समिति' की प्रमुख संचालिका रहीं एवं बड़ी निष्ठा से उन्होंने यह उत्तरदायित्व निभाया।

महान क्रान्तिकारी अमरनाथ चट्टोपाध्याय की विधवा बुआ श्रीमती ननीबाला देवी भी प्रमुख क्रान्तिकारी थीं। श्रीमाँ के मन्त्र शिष्य क्रान्तिकारी रामचन्द्र मजूमदार १९१५, ३ न. रेगुलेशन में गिरफ्तार हुए। उनके पास एक माउजर पिस्तौल थी। उसे जानने हेतु ननीबाला उनकी स्त्री बनकर जेल में उनसे मिलते समय गिरफ्तार की गई। उन्हें यातना देने पर भी उनसे पुलिस कोई खबर न ले सकी। कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी जेल में उन्होंने अनशन आरम्भ किया। गुप्तचर पुलिस के विशिष्ट अधीक्षक गोल्डि ने बार-बार आश्वासन दिया कि आहार करने पर उनकी इच्छा पूर्ण की जाएगी। तब ननीबाला ने उन्हें कहा – ''मुझे बागबाजार में श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की लीला सहधर्मिणी माँ सारदा देवी के पास रख दीजिए, तब मैं अनशन तोड़ दूँगी।'' गोल्डि ने आवेदन लिखने को कहा और उन्होंने लिखकर दे दिया। गोल्डि के द्वारा उस आवेदन पत्र को उनके समक्ष फाड़ देने पर आहत सिंहनी की तरह झपटकर ननीबाला ने गोल्डि के गाल में जोरदार थप्पड़ जमा दी और दूसरा थप्पड़ मारने ही वाली थीं, तब तक कर्मचारियों ने उनका हाथ पकड़कर कहा, बुआजी ! यह क्या कर रही हैं? वे बोलीं, 'जब फाड़ना ही था, तो मुझसे क्यों लिखवाया?' १९१७ ई. को कारागार में बन्दी रहकर ननीबाला ने श्रीमाँ का स्मरण करते हुए यह साहसिक कार्य करने की असीम शक्ति अर्जित की।

विख्यात क्रान्तिकारी नायक २० वर्षीय यतीन्द्रनाथ

मुखोपाध्याय (बाघा यतीन) श्रीमाँ के पास नियमित आवागमन करते एवं आशीर्वाद लेते थे। पुलिस की आँखों में धूल झोंककर १९१५ में अन्तिम काल के लिए उड़ीसा के बालेश्वर के जंगलों में अज्ञातवास हेतु चले गए। यात्रा के पूर्व क्षणों में उन्होंने सुना कि उसी ट्रेन से श्रीमाँ जयरामबाटी जा रही हैं। उन्होंने अपने एक क्रान्तिकारी मित्र से कहा कि जो भी हो, माँ को प्रणाम कर के ही जाऊँगा। माँ सारदा देवी ने भी यह सुनकर व्याकुल होकर सम्मति दी। द्वितीय श्रेणी के एक डब्बे में श्रीमाँ सारदा घूँघट में बैठी थीं। यतीन्द्रनाथ के द्वारा प्रणाम कर चरण-रज लेने पर माँ ने उसका हाथ पकड़ कर उठाया एवं अपने पास बैठाया। घूँघट खोलकर उससे बातचीत की और बोलीं, बेटा सावधान रहना। कोई कितना भी घनिष्ठ हो, किन्तु श्रीमाँ पुरुषों से घूँघट की आड़ में ही बात करती थीं। वहाँ बहुत से गृहस्थ और संन्यासी थे, वे सभी कमरे के बाहर आ गए। थोड़ी देर बाद बाघा यतीन डब्बे से उतरे और कुछ दूर पुलिस को देखकर वहाँ से कुछ ही क्षणों में अदृश्य हो गये। पुलिस को उसकी भनक भी न लगी। सत्येन्द्र नाथ मजूमदार जी ने माँ से पूछा, "माँ आप दोनों के बीच क्या बातचीत हुई? माँ ने कहा, 'देखा उसका मुख आग उगल रहा है। यही बाघा यतीन की श्रीमाँ से अन्तिम भेंट थी। १० सितम्बर, १९१५ को बाघा यतीन बालेश्वर के पास बूढ़ि बालाम नदी के किनारे जंगल में कर्नल टेगार्ड की गोली से आहत होकर बालेश्वर अस्पताल में श्रीमाँ का स्मरण करते हुए स्वर्ग सिधार गए।

१९१७ ई. में एक ही नाम की दो महिलाओं सिन्धुबाला देवी को पुलिस ने गिरफ्तार किया, जिनमें एक प्रसवासन्न थी। उसे अमानवीय अत्याचार कर बाल पकड़ कर खीचते हुए ले जाने की कहानी सुनकर श्रीमाँ सिहर उठीं और बोलीं, 'क्या कहते हो? क्या यह कम्पनी का आदेश था या पुलिस अधिकारी की प्रताड़ना? निरपराध एवं प्रसवासन्न महिला पर इतना अत्याचार तो महारानी विक्टोरिया के समय भी नहीं सना गया। अच्छा वहाँ कोई माई का लाल नहीं था, जो दो थप्पड़ देकर पुलिसवालों से उन महिलाओं को मुक्त करा दे। यदि यह अंग्रेज सरकार का आदेश था, तो उसे जाने में देरी नहीं है, कहती हुई गरज उठीं। स्वामी ईशानानन्द लिखते हैं, सर्वदा सौम्य रहने वाली माँ का अग्नि-प्रज्वलित मुख-मण्डल हमने इसके पहले कभी नहीं देखा।

श्रीमाँ सारदा को ग्रामीण, अनपढ़, सौम्य बाला के रूप में ही हम जानते हैं, किन्तु उनका विश्वव्यापी विराट हृदय स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित क्रान्तिकारियों से कैसे जुड़ा हुआ था, उसकी व्यापक चर्चा उपरोक्त पंक्तियों में की गई। उनकी भावनात्मक व्यापकता कितनी असीम और विलक्षण थी, उससे विस्मित हुए बिना नहीं रहा जाता ! स्त्री-शिक्षा के माध्यम से नारी-जागरण हो, इसलिए वे महिला-भक्तों की कन्याओं को निवेदिता स्कूल में भर्ती कर पढ़ने, सिलाई-कढ़ाई सीखने और अपने पैरों पर खड़े होने का निर्देश देती थीं। समकालीन पर्दा प्रथा से जकड़े रहनेवाले तत्कालीन बंगाल और समस्त भारत में नारी-जागरण करना रुढ़िवादियों के विरुद्ध क्रान्ति थी। जाति-भेद और अस्पृश्य-बोध की भावना से भावी पीढ़ी मुक्त हो, जिससे स्वाधीन भारत प्रगतिशील हो, ऐसी शिक्षा निवेदिता स्कूल में दी जाय, यह उनकी कामना थी। वे ही निवेदिता विद्यालय की प्रेरणा स्रोत थीं। परवर्ती काल में उस विद्यालय से अनेकों विदुषी लेखिकाओं, स्वतन्त्रता आन्दोलनकारी महिलाओं का उत्थान हुआ। इन सबमें जगत जननी माँ सारदा की असीम कृपा थी। सचमुच श्रीमाँ सारदा शक्ति-स्वरूपिणी भगवती थीं। तभी तो पाश्चात्य देशों में हिन्दू धर्म की पताका फहराने के पूर्व विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द जी ने श्रीमाँ से अनुमति एवं आशीर्वाद लिया और विजय प्राप्त करने के पश्चात भारत लौटने पर अपनी विजयश्री को पुन: उनके ही चरणों में समर्पित कर दिया। उन्हें रामकृष्ण-संघ की जननी के रूप में अधिष्ठित किया और कहा – श्रीमाँ सारदा के आविर्भाव के साथ-साथ भारतवर्ष में मातृशक्ति का जागरण होगा।

जननीं सारदां देवीं रामकृष्णं जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः।। OOO

(पृष्ठ ३५७ का शेष भाग)
विविधता के लिये गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सबके सामने लायें और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उन्हें जानें-समझें तथा जीवन में उतारें – यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है। (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-५, पृष्ठ-१७९)

काव्य-लहरी

वतन के लिये दे दें, हम सौ सौ जिन्दगानी

डॉ. ऋचा सत्यार्थी, अ.सर्जन, शहडोल

गीत वतन है, गजल वतन है, वतन मेरी कहानी ।
हम वतन की खातिर दे दें, सौ-सौ जिन्दगानी !
हर इक दिल को दिल से मिलाएँ,
हर चेहरे पर फूल खिलाएँ ।
हमें गर्व है हम लिखेंगे, खुशियों भरी कहानी
वतन के लिये दे दें, हम सौ-सौ जिन्दगानी !
जो कदम बढ़े न रुकने देंगे,
न सिर हिमालय का झुकने देंगे ।
नई जंग है, नया जोश है, और नई जवानी ।
वतन के लिये दे दें, हम सौ-सौ जिन्दगानी !
हर तूफाँ से टकरा जाएँ,
हम मंजिल तक कदम बढ़ाएँ ।
आज समन्दर की लहरों में जैसे नई रवानी
वतन के लिये दे दें, हम सौ-सौ जिन्दगानी !
माँ ! तेरी हम लाज रखेंगे,
तेरे सिर पर ताज रखेंगे ।
तुझको सरताज बनाने, हमने मन में ठानी ।।
वतन के लिये दे दें, हम सौ-सौ जिन्दगानी !

विजय गान

आनन्द तिवारी पौराणिक

वीरो ! पीछे मुड़ मत देखो,
बढ़ो सदा आगे तुम ।
धरे हाथ पर हाथ न बैठो,
साहस से मार्ग गढ़ो तुम ।।
आँधी हो या हो तूफान,
हर संकट से टकराना तुम ।
श्रम का पाठ पढ़ जाना तुम ।।
आगे बढ़ना ही जीवन है ।
रुक जाना ही मरण है ।।
चक्रवात या झंझावातें ।
या घनघोर अंधेरी रातें ।।
सबसे टकराना तुम ।
विजय गान गाना तुम ।।

जहाँ इंसान बनाए जाते हैं

संतोष कुमार पटेल, इंजिनीयर

जहाँ 'वन्दे मातरम्' 'भारत माँ जय' के
जयकारे लगाए जाते हैं ।
हम उस धरती के वासी हैं,
जहाँ इंसान बनाए जाते हैं ।।१।।

सारा जग इसके वशीभूत
यह भारत माँ महारानी है ।
विश्वबन्धुत्व की भावनावाला
वह सच्चा हिन्दुस्तानी है ।।
यह धरा स्वर्ग है जहाँ,
प्रभु-मंदिर पाये जाते हैं ।
हम उस धरती के वासी हैं,
जहाँ इंसान बनाए जाते हैं ।।२।।

यहाँ बच्चों को माँ की आँचल में
संस्कार दिया है जाता ।
मेरी प्रतिभा को देख
गरजता बादल रुक जाता ।।
यहाँ उत्साह उमंग से युवक
नव नभ में उड़ाये जाते हैं ।।३।।
हम उस धरती के वासी हैं,
जहाँ इंसान बनाए जाते हैं ।

ऐसा ठौर ठिकाना छोड़

पं. गिरिमोहन गुरु, होशंगाबाद

प्यासों को न पानी दे, उन नदियों पर जाना छोड़ ।
बदले में जो गाली दे, उन गानों को गाना छोड़ ।
श्रोताओं के कान फटें, ऐसे वाद्य बजाना छोड़ ।
पछतावा ही हाथ रहे, उस घर आना जाना छोड़ ।
ठीकठाक से रह न सके, ऐसा ठौर ठिकाना छोड़।

मोहनदास की शिक्षा

मोहनदास गाँधी का जन्म २ अक्तूबर, १८६९ को गुजरात राज्य के पोरबन्दर शहर में हुआ था। बालक मोहनदास जब ७ साल का था, तो उसे राजकोट की ग्रामशाला में भरती कराया गया था। वह बहुत ही लज्जाशील स्वभाव का था । वह कभी भी अपने से बड़ों में दोष नहीं देखता था। उसके बचपन की दो घटनाएँ उसे अन्त तक स्मरण थीं। उसके पिता के पास एक पुस्तक थी, जिसका नाम 'श्रवण-पितृभक्ति नाटक' था। मोहनदास ने बड़े चाव से वह पुस्तक पढ़ी। श्रवणकुमार की अपने अन्धे माता-पिता की सेवा, उन्हें भगवान के समान मानना इत्यादि बातों ने मोहनदास को बड़ा आकर्षित कर दिया। उस जमाने में एक छोटे से डब्बे में काँच के अन्दर चित्रों को दिखाया जाता था। मोहनदास ने श्रवणकुमार के उस प्रसिद्ध चित्र को देखा, जिसमें वह अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थयात्रा कराने ले जाता है। इस चित्र ने उसके मन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। उसकी इच्छा होती थी कि उसे भी श्रवणकुमार के समान माता-पिता का आज्ञाकारी बनना चाहिए। श्रवण की मृत्यु पर उनके माता-पिता को जो दुख हुआ था, उस घटना को मोहनदास एक गीत के द्वारा बाजे पर बजाता था। पिताजी ने उसे एक बाजा खरीद कर दिया था।

इन्हीं दिनों कोई एक नाटक-कंपनी आई हुई थी। मोहनदास को उसके माता-पिता ने नाटक देखने की छुट्टी दी। नाटक का विषय था – सत्यवादी हरिश्चन्द्र। यह नाटक मोहनदास को इतना अच्छा लगा कि वह उसे बार-बार देखता। किन्तु बार-बार जाने की छुट्टी तो नहीं मिलती थी। इसलिए वह अपने मन में ही बार-बार इस नाटक को दुहराता। यहाँ तक कि उसे सपने में भी हरिश्चन्द्र ही दिखाई देते। वह सोचता कि सब लोग हरिश्चन्द्र की तरह सत्य क्यों नहीं बोल सकते? हरिश्चन्द्र पर्वत के समान विपत्तियों के सामने भी सत्य से कभी नहीं डिगे। नाटक में जैसा हरिश्चन्द्र के बारे में दिखाया गया, मोहनदास को लगता कि सचमुच में हरिश्चन्द्र को इतनी भयानक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। हरिश्चन्द्र के दुख को देखकर मोहनदास भी रोने लगता। बड़े होने के बाद भी वे कहते थे कि आज भी यदि मैं श्रवणकुमार और हरिश्चन्द्र नाटकों को पढ़ूँगा तो मेरी आँखें गीली हो जाएँगी।

मोहनदास को हाईस्कूल में संस्कृत सीखने में कम रुचि थी। संस्कृत सिखानेवाले शिक्षक का नाम कृष्णशंकर मास्टर था। वे थोड़े कड़े स्वभाव के थे। विद्यार्थियों को अच्छी तरह सिखाने के लिए ही उनका ऐसा स्वभाव था। उस स्कूल में फारसी भी सिखाई जाती थी। फारसी सिखाने वाले शिक्षक नरम स्वभाव के थे। विद्यार्थियों के बीच चर्चा चलती कि फारसी तो बड़ी आसान है और उसके शिक्षक भी अच्छे हैं, इसलिए संस्कृत के बदले फारसी ही पढ़ी जाए। मोहनदास भी इस लालच में फँस गए और फारसी के वर्ग में बैठना शुरू किया। संस्कृत शिक्षक को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने मोहनदास से कहा, 'यह तो समझ कि तू किनका बेटा है? क्या तू अपने धर्म की भाषा नहीं पढ़ेगा? तुझे जो कठिनाई हो, सो मुझे बता। मैं तो सब विद्यार्थियों को अच्छी तरह से संस्कृत सिखाना चाहता हूँ। आगे चलकर उसमें तुझे बहुत रस मिलेगा। तुम्हें इस तरह हार नहीं माननी चाहिए। तुम फिर से मेरी कक्षा में बैठो।' मोहनदास तो लज्जा के मारे सकुचा गया। वह फिर से संस्कृत सीखने लगा। बाद में वे अपने संस्कृत आचार्य का बहुत उपकार मानते, क्योंकि जितनी थोड़ी-बहुत संस्कृत उन्होंने उस समय सीखी थी, उसके कारण ही वे शास्त्र पढ़ सकते थे। वे कहते भी कि हिन्दू बालक को देवभाषा संस्कृत अवश्य सीखनी चाहिए। ❍❍❍

नन्हें-नन्हें सेनानी

हँसते-हँसते आज चले हम नन्हें नन्हें सेनानी,
मातृभूमि की बलिवेदी पर शीश कटाने अभिमानी।
मत समझो हम नन्हें-नन्हें, ताकत है हममें भारी,
महलों को भी राख बना सकती है नन्हीं चिन्गारी।
कदम बढ़ाया अब आगे, नहि पीछे पीठ दिखायेंगे,
मातृभूमि पर हो न्यौछावर, जग में अमर कहायेंगे।।

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

२९. विपरीत परिस्थितियों में हम अपने लक्ष्य से विचलित न हों, इसके लिये हमें क्या करना चाहिये?

– आगन कुमार राजवाड़े, आ.सा. मवि. अम्बिकापुर

उत्तर – संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिसका मन कभी-कभी लक्ष्य से विचलित न हुआ हो। विपरीत परिस्थतियों में भी हम अपने लक्ष्य से विचलित न हो, इसके लिये हमें सर्वप्रथम अपने लक्ष्य को अपनी भाषा तथा ज्ञान से ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये कि हमारा लक्ष्य क्या है और यह हमारे जीवन के लिये कितना महत्त्वपूर्ण है। हमें सदा अपने जीवन के लक्ष्य की उपयोगिता और विशेषता का ध्यान रखना चाहिये तथा मन में संशय आने पर मन को अपने लक्ष्य की महानता को बताकर मन को समझाकर उसे पुन: लक्ष्य में लगाना चाहिये। लक्ष्य से विपरीत वस्तुओं और विचारों की उपेक्षा कर हमें सदा अपना पूरा मन लक्ष्य पर ही केन्द्रित करना चाहिये।

३०. मन क्यों चंचल होता है? कुछ भी अच्छा काम करने से पहले मन क्यों विचलित हो जाता है?

– अशोक कुमार कुशवाहा, आदर्श साईं महाविद्यालय, अम्बिकापुर

उत्तर – मन चंचल तब होता है, जब मन के सामने एकाधिक आकर्षण की वस्तुएँ हुआ करती हैं। मन को शान्त करने का उपाय यही है कि हम निश्चित रूप से यह जान लें कि हम जीवन में चाहते क्या हैं? अर्थात् हमारे जीवन का सुनिश्चित लक्ष्य क्या है? हमें सदैव अपने जीवन की चरम लक्ष्य की ओर सजग दृष्टि रखनी चाहिये।

३१. मैं कुछ कार्य सही समझकर उस कार्य को पूरे मन से करता हूँ। लेकिन जो कार्य मैं करता हूँ, वह कभी-कभी गलत हो जाता है। तो मैं कैसे करूँ कि कार्य गलत न हो? – अजय बघेल, बिलासपुर

उत्तर – कोई भी शुभ कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व उस कार्य की विधि उसमें लगनेवाली अर्थ-व्यवस्था आदि का ठीक-ठीक विचार कर लेना चाहिये। कार्य को छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर एक-एक भाग को ठीक-ठीक पूरा करते हुये आगे बढ़ने से गलती नहीं होगी।

हम मातृभूमि के सैनिक हैं

सोहन लाल द्विवेदी

हम मातृभूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं।
बलिवेदी पर हँस-हँस करके
निज शीश चढ़ानेवाले हैं।।

केसरिया बाना पहन लिया,
तब प्राणों का मोह कहाँ?
जब बने देश के संन्यासी,
नारी-बच्चों का छोह कहाँ?
जननी के वीर पुजारी हैं,
सर्वस्व लुटानेवाले हैं।। हम..

अब देशप्रेम की रंगत में
रंग गया हमारा यह जीवन,
उसके ही लिये समर्पित है
सब कुछ अपना यह तन-मन-धन।
आगे को बढ़ा चरण रण में
पीछे न हटानेवाले हैं।। हम...

आगे बढ़ जा इस जीवन से

गुलाब खण्डेलवाल

आगे बढ़ जा इस जीवन से
ढूँढ़ उसे जो मुक्त सदा है, जीवन और मरण से।
तू स्वतन्त्र परबस भी जीवन,
कर्म-लिप्त भी चिर अलिप्त बन।
निज को देख निकलकर दो क्षण, जड़ता के बन्धन से।
जग सपने सा मिटता जाता,
निभे कहाँ तक इससे नाता,
जो अनन्त की झलक दिखाता, जुड़ जा उस चेतन से।
जिसने रचे खेल ये सारे, देख खड़ा, वह बाँह पसारे,
कभी ध्यान भी तो कर, प्यारे ! उसका सच्चे मन से।।
आगे बढ़ जा इस जीवन से

राष्ट्र कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

(डॉ. वीरेन्द्र शर्मा जी कई देशों में भारत के राजदूत रहे हैं। साथ ही उनमें देशप्रेममय साहित्यिक अभिरुचि भी है। झांसी की रानी, वीरों का कैसा हो बसन्त, राखी की चुनौती जैसी ओजस्वी कविताओं की अमर रचनाकर और स्वाधीनता सेनानी सुभद्रा कुमारी चौहान के जन्म जयन्ती पर यह लेख दैनिक भास्कर से साभार मुद्रित है। - सं.)

भारतीय इतिहास के उस कालखण्ड में, जब स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये वीर सेनानी सतत संघर्षशील थे, जिन रचनाकारों ने साहस, शौर्य, त्याग, बलिदान, एकता एवं संगठन अनुप्राणित किया, उनमें राष्ट्र कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शायद ही कोई होगा, जिसने उनकी ओजस्वी कविताएँ न पढ़ी हों और पढ़कर उन्हें कंठस्थ न किया हो।

'झाँसी की रानी' के अप्रतिम शौर्य की गाथा का सजीव चित्रण उन लोगों में एक नई दृष्टि, नया चैतन्य बोध, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जागृत करता था, जो विदेशी शासकों के स्वर में स्वर मिलाते हुए सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम को विद्रोह की संज्ञा देकर हीन भावना से ग्रस्त थे। दूसरे इस शौर्य-गीत ने जन-जन में जो आत्मशक्ति और क्रान्तिकारी-भावना संचारित की, वह प्रभाव की व्यापकता में अद्‌भुत थी, वर्णनातीत थी।

वस्तुत: भारतीय इतिहास में यह शौर्यगीत सदा के लिए स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया है –

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।।..

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की व्यापकता और अखिल भारतीय स्वरूप को रेखांकित करती हैं ये पंक्तियाँ –

महलों ने दी आग, झोपड़ों ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिन्गारी अन्तरम से आई थी।
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छायी थी,
मेरठ, कानपुर पटना ने भी भारी मार मचाई थी।
जबलपुर कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी।..

'वीरों का कैसा हो वसन्त' में वासंती प्रेम और वासंती बलिदानी वेश के द्वंद्व का भाव-प्रवण चित्रण है –

गलबाहें हों, या हो कृपाण,
चलचितवन हो, या धनुष-बाण।
हो रस-विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरन्त।
वीरों का कैसा हो बसन्त?

'राखी की चुनौती' में कवत्रियी ने चित्तौड़ के ऐतिहासिक जौहर के परिप्रेक्ष्य में राखी-बन्धन की चुनौती का उल्लेख किया है –

है आती मुझे याद चित्तौड़गढ़ की,
धधकती है दिल में वह जौहर की ज्वाला।
हैं माता-बहिन रो के उसको बुझाती,
कहो भाई तुमको भी है कुछ कसाला?
है, तो बढ़े हाथ, राखी पड़ी है,
रेशम-सी कोमल नहीं वह कड़ी है।
अर्जी देखो लोहे की वह हाथकड़ी है,
इसी प्रण को लेकर बहिन यह खड़ी है।।
आते हो भाई? पुनः पूछती हूँ
कि माता के बन्धन की है लाज तुमको?
तो बन्दी बनो, देखो बन्धन है कैसा,
चुनौती यह राखी की है आज तुमको।।

मातृ-वेदी पर सर्वस्व बलिदान और आत्मोत्सर्ग के संकल्प की यह भावपूर्ण अभिव्यंजना व्यथित हृदय कविता में अतिशय प्रेरणादायक है –

सुनूँगी माता की आवाज, रहूँगी मरने को तैयार।
कभी भी उस वेदी पर देव ! न होने दूँगी अत्याचार।
न होने दूँगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।
मातृ-मन्दिर में हुई पुकार, चढ़ा दो मुझको हे भगवान।

सुभद्राजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उल्लास और उत्साह का प्रतीक है। 'मेरा जीवन' कविता की पंक्तियाँ इसी भावोद्गार का सहज उच्छलन हैं –

उत्साह, उमंग निरन्तर रहते मेरे जीवन में
उल्लास विजय का हँसता, मेरे मतवाले-मन में।

आशा आलोकित करती, मेरे जीवन के प्रतिक्षण।
हैं स्वर्ण सूत्र से वलयित, मेरी सफलता के घन।
सुख भरे सुनहले बादल, रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास, प्रेम, साहस हैं, जीवन के साथी मेरे।

विद्रोही मन से 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो' में उन्होंने प्रभु से आश्वासन की याचना करते हुए लिखा –

यह निर्मम समाज का बन्धन,
और अधिक अब सह न सकूँगी।
यह झूठा विश्वास प्रतिष्ठा
झूठी, इसमें रह न सकूँगी।
ईश्वर भी दो हैं, यह मानूँ,
मन मेरा तैयार नहीं है।
किन्तु देवता यह न समझना,
तुम पर मेरा प्यार नहीं है।
मेरा भी मन है जिसमें
अनुराग भरा है, प्यार भरा है।
जग में कहीं बरस जाने को
स्नेह और सत्कार भरा है।।
वही स्नेह, सत्कार, प्यार मैं,
आज तुम्हें देने आई हूँ।
और इतना तुमसे आश्वासन,
मेरे प्रभु लेने आई हूँ।
तुम कह दो तुमको उनकी
इन बातों पर विश्वास नहीं है।
छूत-अछूत, धनी-निर्धन का
भेद तुम्हारे पास नहीं है।।

सुभद्राजी भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्व सर्वधर्म-समभाव एवं पारस्परिक सौहार्द की प्रबल पक्षधर हैं। 'बालिका का परिचय' में वे लिखती हैं –

मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद, काबा-काशी यह मेरी।
पूजा-पाठ, ध्यान-जप-तप है, घट-घट वासी यह मेरी।
कृष्णचंद्र की क्रीड़ाओं को, अपने आंगन में देखो।
कौशल्या के मातृमोद को, अपने ही मन में लेखो।
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीव दया जिनवर गौतम की, आओ देखो इसके पास।।

सुभद्राजी के मन में राष्ट्रीय जीवन में मातृभाषा, लोकवाणी हिन्दी की प्रतिष्ठा एवं व्यापक व्यावहारिक प्रयोग के लिए संकल्प की मंगलमयी व सुखद भावना थी –

तू होगी आधार, देश की, पार्लमेण्ट बन जाने में।
तू होगी सुख-सार देश के, उजड़े क्षेत्र बसाने में।
तू होगी व्यवहार देश के, बिछड़े हृदय मिलाने में।
तू होगी अधिकार, देश भर को स्वातन्त्र्य दिलाने में।

सुभद्रा कुमारी चौहान का रचना-संसार, राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण सरोकारों से संश्लिष्ट है। राष्ट्र कवयित्री के स्वरूप का निर्णायक तत्त्व भी यही है। उनका जन्म १९०४ में नागपंचमी के दिन १६ अगस्त को निहालपुर ग्राम (इलाहाबाद) में हुआ था। पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था, जिनकी ६ संतानों (२ पुत्र, ४ पुत्रियाँ) में एक थी सुभद्रा। सुभद्रा के बड़े भाई ठाकुर रामप्रसाद सिंह पुलिस में अधिकारी थे, जिन्होंने राष्ट्रभक्ति के कारण असहयोग आन्दोलन के दौरान त्यागपत्र दे दिया था। छोटे भाई ठाकुर राजबहादुर सिंह प्रसिद्ध अधिवक्ता थे। सुभद्राकुमारी की प्रारम्भिक शिक्षा इलाहाबाद के क्रास्थवाइट बालिका विद्यालय में हुई। १५ वर्ष की अवस्था में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसी वर्ष उनका विवाह छोटे भाई ठाकुर राजबहादुर सिंह के सहपाठी मित्र लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हो गया। खण्डवा के रहनेवाले अत्यन्त उदार स्वभाव के लक्ष्मणसिंह स्वयं भी उदीयमान प्रतिभाशाली लेखक थे। १९२० में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पत्र 'कर्मवीर' का जब जबलपुर से श्रीगणेश हुआ, तब लक्ष्मणसिंह चौहान को उसका साहित्यिक सम्पादक बनाया गया। कविवर पं. माखनलाल चतुर्वेदी उसके सम्पादक थे। विवाह के बाद लक्ष्मणसिंह और सुभद्रा ने जबलपुर को ही अपना कार्यक्षेत्र बना लिया।

सुभद्राकुमारी की काव्य-प्रतिभा बचपन से ही परिलक्षित थी। १९१३ में मात्र ९ वर्ष की उम्र में उनकी एक कविता 'मर्यादा' में प्रकाशित हुई थी। तब से वे निरन्तर कविताएँ लिख रही थीं और १९३० में उनका संकलन 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसकी उत्कृष्ट रचनाओं एवं लोकप्रियता के कारण हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने उन्हें सेक्सरिया पुरस्कार से सम्मानित किया। उस दौरान

उनकी लघुकथाएँ, बाल-गीत भी लोकप्रिय हो रहे थे। उनके साहित्य का सतत प्रसार हो रहा था। कृतज्ञ साहित्यिक जगत उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित भी कर रहा था।

उन दिनों स्वतन्त्रता के लिये जन-आन्दोलन चरम सीमा पर था। राष्ट्र-सेवा, समाज-सुधार एवं जन-कल्याण के लिए पूर्ण समर्पित सुभद्राकुमारी और उनके पति लक्ष्मणसिंह चौहान की इसमें सक्रिय भूमिका रही। उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं और जेल जाना पड़ा। सुभद्राकुमारी को १९३६ में पहली बार मध्य प्रान्त एवं बरार विधानसभा का सदस्य चुना गया। १९४६ में दूसरी बार वे निर्विरोध चुनी गईं। दुर्भाग्यवश मात्र ४४ वर्ष की अवस्था में १५ फरवरी १९४८ को बसन्त पंचमी के दिन नागपुर से जबलपुर जाते हुए कार दुर्घटना में उनका निधन हो गया। इस असामयिक, आकस्मिक निधन से सम्पूर्ण राष्ट्र स्तब्ध, शोकसंतप्त, खिन्न और क्षुब्ध रह गया।

आज राष्ट्र के लिए जिस संकल्प, साहस एवं उत्साह, सच्ची राष्ट्रीय भावना, नि:स्वार्थ सेवा एवं त्याग, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की आवश्यकता है, उसका मूल प्रेरक तत्त्व सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में स्फुलिंगवत विद्यमान है। सुभद्राजी की रचनाओं का ओजस्वी प्रभाव अद्‌भुत है। इन कृतियों की गति, लय, प्रवाह, सम्पूर्ण संरचना, नैसर्गिक निर्झरिणी के समान सद्य: स्फूर्तिदायक है। समग्र राष्ट्र का आत्मदर्शन इनमें रूपायित है। इस दृष्टि से सुभद्रा कुमारी चौहान सच्चे अर्थों में राष्ट्र कवयित्री हैं। ❍❍❍

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार अमेरिका से यह आग्रह करते हुए पत्र लिखा कि रामकृष्ण संघ के साधुगण भगवान एवं मनुष्य की सेवा के लिए सब कुछ त्याग दें। जब श्रीमाँ सारदादेवी ने यह सुना, तो उन्होंने कहा, 'नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) श्रीरामकृष्ण देव का एक यन्त्र है। जगत के कल्याण के लिए तथा संन्यासी बच्चों और भक्तों के भविष्य के कार्य के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण ही नरेन्द्र के माध्यम से यह लिख रहे हैं। उसने जो लिखा है, सब ठीक है। यथासमय उसका कथन फलित होते देखोगे।'

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८३. जिस मरने से जग डरे, सो मेरे आनन्द

प्रभु ईसामसीह की सत्य निष्ठा व स्नेहिल व्यवहार ने लोगों को आकर्षित किया। दीन-दुखियों व पीड़ितों की वे नि:स्वार्थ भाव से सेवा करते थे। लोग जब चमत्कारी रूप से स्वस्थ होने लगे, तो उन्हें मसीहा मानकर शिष्य बनने लगे। इससे रूढ़िवादी व प्रतिगामी यहूदियों को ईर्ष्या हुई और वे ईसा की निंदा करने लगे। एक शिष्य यहूदा स्क्रेपति को लालच देकर उकसाया गया। उसने और अन्य कुछ लोगों ने ईसा के विरुद्ध झूठी गवाही दी, ईसा को बन्दी बनाकर पीलातुस नामक अधिकारी के पास लाया गया। मसीहा की शालीनता मिलनसारिता व आदर्शवादिता से वह प्रभावित था। उसने लोगों से कहा कि ईसा ने कोई पाप नहीं किया है, इसलिये उसे छोड़ देना उचित होगा, किन्तु भीड़ के न मानने पर उसने पूछा 'इसे' कोड़े लगवा कर छोड़ दूँ, तो क्या आपको स्वीकार्य होगा। उत्तेजित भीड़ जब नहीं मानी, तो उन्हें सूली पर चढ़ाने का निर्णय ले लिया गया। तब ईसा ने कहा, "मैं सूली पर चढ़ने के लिए उतना ही तत्पर हूँ, जितना अन्य प्रकार से मृत्यु होने पर उसका मैं सामना करता। मृत्यु से सुन्दर कुछ भी नहीं है। मृत्यु तो अटल है, हर प्राणी को उसका सामना करना ही पड़ता है।" ईसा ने ऊपर देखा और फिर कहा, "ऐ परमात्मा, इन लोगों को क्षमा कर दो क्योंकि वे नासमझ हैं। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे है। तुमने मुझे जो शरीर दिया है, वह तुम्हें ही अर्पित करना चाहूँगा। उन्हें जब सूली पर चढ़ाया गया, तो वे न तो रोए न ही चिल्लाए, अचानक भूचाल आया, कब्रें खुल गई और अंधेरा छा गया, अब तक अनेक शिष्य वहाँ पहुँच गए थे। भूचाल के थमने पर उन्होंने ईसामसीह का शव माँगा और उसे दफना दिया।

जो व्यक्ति अपने प्रति घृणा करने लगता है, उसके पतन का द्वार खुल चुका है, और यही बात राष्ट्र के सम्बन्ध में भी सत्य है ।

स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द का समाजवाद

कनक तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, ऊच्च न्यायालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

(गतांक से आगे)

स्वामी विवेकानन्द के सुधार का आशय नैतिक और आध्यात्मिक सुधार से रहा है। उसके द्वारा नए मानवीय आदर्श मानवीय संस्थाओं का उत्प्रेरण कर सकें। उन्होंने यह रहस्यात्मक बल्कि अतीन्द्रिय शक्ति अद्वैत में ही खोजी थी। यह विरोधाभास है कि भारत के प्राचीन इतिहास में अद्वैत वेदान्त की शक्ति का परिचय होने के बावजूद सामान्य जनता के आर्थिक और सामाजिक उन्नयन के लिये धार्मिकों ने विशेष प्रयत्न नहीं किए थे। भारतीय ऋषि चिन्तकों और अध्यात्मवेत्ताओं ने स्वयं को दर्शन, मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र के प्रचलित सिद्धान्तों के निरूपण तक सुरक्षित रखा था। विवेकानन्द सम्भवत: पहले भारतीय आध्यात्मिक विचारक हैं, जिन्होंने अद्वैत को न केवल सामाजिक क्रान्ति के उपकरण बल्कि हथियार के रूप में उपयोग करने की चेष्टा की। एक हिंसक हथियार के रूप में नहीं बल्कि आत्मिक और नैतिक क्रान्ति के प्रेरक उपकरण के रूप में। आर. के. दासगुप्ता ने 'स्वामी विवेकानन्द : द प्रोफेट ऑफ वेदान्तिक सोशलिज़्म' नामक पुस्तक में उद्धरण देते हुए लिखा है कि विवेकानन्द के अतिरिक्त आज तक ऐसा कोई अद्वैतवादी आदर्श समाजवादी विचारों से गूँथा जाने का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, जिसमें एक वैश्विक धर्म की परिकल्पना सन्निहित हो।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने अद्वैतवादी सामाजिक दर्शन को दो मूल आधारों पर प्रतिष्ठित किया था। उन्हें सामाजिक, आर्थिक विचारधाराओं की व्याख्यामूलक उपपत्तियों से कोई अकादमिक सरोकार नहीं था। वे समाजवाद की किसी नई अवधारणा का प्रचलन भी नहीं करना चाहते थे। विवेकानन्द की प्राथमिकता थी कि किस तरह भारत के गरीबों और दलितों के जीवन स्तर को उठाया और उन्हें उच्चतर सांस्कृतिक मूल्यों से सम्पृक्त किया जाय। यह प्रयोजन केवल सामयिक या सामाजिक नहीं था। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर का अंश या प्रतिनिधित्व ढूँढ़ा था। इस सहज स्वीकृति पर जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में विवेकानन्द के विचारों की अन्तर्राष्ट्रीयता पर सार्थक टिप्पणी की है –

"Progressively, Vivekananda grew more international in outlook.' He says in that work, 'There cannot be any progress, without the whole world following in the wake, and it is becoming everyday clearer that the solution of any problem can never be attained on racial, or national, or narrow grounds. Every idea has to become broad till it covers the whole of this world, every aspiration must go on increasing till it has engulfed the whole of humanity, nay, the whole of life, within its scope."

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान रोमाँ रोलां ने अद्वैत विचार को अन्य विचारों की तुलना में श्रेष्ठ कहा है। उनके अनुसार एक अभिजात अद्वैत विचारक स्वामी विवेकानन्द ने समाज के सबसे निम्न स्तर और सर्वश्रेष्ठ कुलीन वर्ग के बीच सभी तरह की एकता स्थापित करने की अद्भुत अवधारणा वैश्विक विश्वास में समाहित की है।

स्वामी विवेकानन्द के गरीबों के उत्थान की प्रेरणा एक आर्थिक विचारक या राजनीतिक विज्ञानवेत्ता का रूप नहीं ली। एक विचारक के रूप में प्रसिद्धि के बहुत पहले से ही उनमें गरीबों के प्रति करुणा का भाव आत्मसात् हो गया था। उन्होंने अपनी स्वाभाविक करुणा को राजनीतिक हथियार या सामाजिक आन्दोलन के प्रमेय के रूप में उपयोग करने की जरूरत नहीं समझी। उन्होंने भारत के सामाजिक मध्यम धनी और कुलीन वर्ग के विरुद्ध कटु आलोचना की। यह केवल दिखावा नहीं था, बल्कि विराट मानवता के लिए उनके मन में करुणा का सागर हिलोरें ले रहा था। इस अर्थ में विवेकानन्द भूगोल की सीमा के ऊपर उठ गए थे। उन्हें पूरे भारत के साथ विश्व की भी चिन्ता थी। एक ओर उन्होंने निम्नतर वर्ग को किसी जनविद्रोह के लिए नहीं उकसाया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने उच्च वर्ग के मन में गरीबों के प्रति उदार होने तथा अहसान जताने की वृत्ति का मुँह भी नोचा। उन्होंने जन-साधारण को किसी भी राष्ट्र या समाज के उत्थान के लिए ऐतिहासिक आवश्यकता समझा। वे चाहते कि साधारण व्यक्ति को भी उच्चतम स्थिति में पहुँचने का नैतिक अवसर और अधिकार मिलना चाहिए। उनकी दृष्टि में यही वर्ग भविष्य का भारत होगा। ऊँची जातियों को तो उन्होंने शारीरिक और नैतिक दृष्टि से

दुर्बल करार दिया था। उनके किसी भी समकालीन राष्ट्रीय नेता को ऐसा कहने का साहस नहीं हुआ था। उन्होंने यह दुख व्यक्त किया कि शिक्षित, सुसंस्कृत, धनाढ्य और कुलीन वर्ग में दलितों के लिये योजनाबद्ध ढंग से सेवा करने के प्रकल्प तो दूर, विचार तक पनपते नहीं दिखाई देते। जनता ही किसी राष्ट्र या समाज की रीढ़ की हड्डी होती है। उनके अनुसार मुट्ठी भर पढ़े लिखे और समर्थ लोगों से समाज का निर्माण नहीं होता। जब तक जनता में निरक्षरता, भुखमरी और जीवन की निम्नतर स्थितियाँ दूर नहीं की जातीं, तब तक उनके लिए किसी राजनीतिक गतिविधि का कोई अर्थ नहीं है।

विवेकानन्द के सन्दर्भ में यह भी एक ऐतिहासिक सच है कि उनकी मृत्यु के बाद देश को स्वतन्त्र होने में पाँच दशकों का समय लगा। स्वतन्त्रता, संविधान, स्वराज और प्रजातान्त्रिक आधार पर चुनी गई लोकतान्त्रिक सरकार की सम्भावना का तब इतिहास तक को कोई पता नहीं था।

इस कारण से भी विवेकानन्द राजनीतिक मुहावरों या संस्थाओं के आधार पर भारत के नवनिर्माण का स्वप्न साकार करने के सिद्धान्त का प्रचार नहीं कर सकते थे। देश की परतन्त्रता की चुभन उनके विचारों और उद्गारों में लगातार झलकती रही है। देश तब किसी बड़े राजनैतिक संघर्ष के लिए तत्पर नहीं दिख रहा था। धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों की धुरी पर अपने विचारों की स्थापना के अतिरिक्त देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति ने भी विवेकानन्द को एक लोकप्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता बनने के बदले एक नैष्ठिक साधु की भूमिका सौंपी थी। उनका आह्वान एक नए सामाजिक लोकाचार, नई नैतिकता, नए उत्साह और नए सामाजिक आग्रह से पूर्ण था। विवेकानन्द ने समाज को यह कहकर विशेषता प्रदान की कि समाज ही नए विचारों का सरोवर है, नए मूल्यों का निर्माता है। वह नई संस्थाएँ विकसित कर ऐसे उदभूत् नव विचारों पर आचरण भी कर सकता है। पश्चिमी प्रकृति के समाजवाद पर विवेकानन्द ने यह कहकर सार्थक हमला किया था कि कहने को तो वह समाजवाद है, लेकिन वास्तव में वह शासकीय संस्थाओं की तानाशाही पर विश्वास करने के कारण सरकारवाद है।

विवेकानन्द ने संस्थाओं के गठन और सुसंचालन की सुनिश्चित आदर्श संहिता प्रस्तावित की। उनकी दृष्टि में आदर्शविहीन, बौद्धिक, सामाजिक तथा अन्य संस्थाएँ उद्देश्यविहीन थीं। इसलिये उन्होंने ऐसे समाज-रचना का आग्रह किया, जिसमें गरीब-से-गरीब व्यक्ति को भी सम्मानजनक जीवन का अधिकार जागृत दिखाई दे। उन्होंने नवयुवकों का आह्वान किया कि वे झोपड़ियों में जाकर निर्धनों को शिक्षित करें। उन्होंने तथाकथित समाज सेवाओं की आलोचना की और मानव के मूलभूत समस्याओं की बात कही। उन्होंने स्पष्ट कहा, जनता को उसके अधिकार और सुविधाएँ इसीलिए नहीं मिल रही हैं क्योंकि वह शिक्षित नहीं है। यदि वह शिक्षित हो गई, तो उसके जीवन स्तर के उठने से देश का उत्थान स्वयमेव हो जाएगा। 'आम जनता ही राष्ट्र है' जैसा कथन स्वामी विवेकानन्द के पहले अन्य किसी भारतीय राष्ट्रीय नेता से सुनाई नहीं पड़ा था। स्वयं एक अप्रतिहत बुद्धिजीवी और कुलीन व्यक्ति होने के बावजूद उन्होंने बुद्धिवादिता और कुलीनता को जनता की सेवा के संयुक्त उत्तरदायित्व से जोड़कर ही देखा था। उन्होंने एक बार कहा था —

"When the masses will wake up, they will come to understand your oppression of them, and by a puff of their mouth you will be entirely blown away! It is they who have introduced civilization amongst you; and it is they who will then pull it down."

उनका तात्पर्य समाज में एक नई सभ्यता के उद्भव से था। एक ऐसी सभ्यता जहाँ अकिंचन भी कुलीनों के साथ सभ्य भाषा में बौद्धिक वार्तालाप कर सके। विवेकानन्द यह जानते थे कि ऐसा सम्भावित जन-युग किसी जनविद्रोह के कारण नहीं आएगा। व्यवस्था, विचारों और वातावरण में परिवर्तन के लिये कुलीन वर्ग को ही आगे बढ़ना होगा। बाद में महात्मा गाँधी ने इसी तरह के प्रयत्नों को हृदय परिवर्तन की संज्ञा दी थी। वे विवेकान्द थे, जिन्होंने धर्म, धन, आर्थिक समानता और सामाजिक सहयोग आदि की तुलना में शिक्षा को प्राथमिकता दी। उन्होंने भारतीय समाज की दुखती रग को सबसे पहले पहचानने का इतिहास में अपना स्थान अब तक सुरक्षित रखा है।

अपने मौलिक विचारों के साथ-साथ विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन से मिली प्रेरणाओं को अपने विचार-दर्शन का आधार बनाया। वे बहु-संस्कृति में सामाजिक एकता के पक्षधर थे, अर्थात् समाज किसी भी तरह क्षतिग्रस्त, खण्डित या असन्तुलित नहीं दिखाई दे। उनके ऐसे विचारों से समाज के वे बुद्धिजीवी सहमत नहीं थे, जिनका

पारलौकिक जगत या आत्मा की सत्ता में कोई विश्वास नहीं था। इन विरोधों से अविचलित विवेकानन्द अपने जीवन आदर्शों को लेकर लगातार सचेष्ट रहे। यही कारण है कि उन्हें लगा था कि पश्चिम के समाजवादी आन्दोलन आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव में अपना लक्ष्य पाने में चूक रहे हैं। उन्होंने माना था कि पश्चिम में सामाजिक न्याय का आग्रह दिनोदिन सबल हो रहा है। उन्होंने १८९६ में कहा था –

'Everything goes to show 'that Socialism or some form of rule by the people, call it what you will, is coming on the boards. The people will certainly want the satisfaction of their material needs, less work, no oppression, no war, more food.'

यूरोप और अमेरिका में समाजवाद के लिये उठ रहे आन्दोलन को स्वामी विवेकानन्द ने अपनी वैश्विक सन्तुलन दृष्टि के कारण अस्वीकार नहीं किया था। इसके बावजूद वे उन व्यवस्थाओं के प्रति आशंकित थे, जो किसी भी रूप में मनुष्य की स्वाधीनता को सीमित, संकुचित या खण्डित करती हैं। २३ दिसम्बर १८९८ को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा था कि जो विचारधारा व्यक्ति की स्वाधीनता की तुलना में सामाजिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन करती है वही समाजवाद कहलाती है। इसी तरह का उल्लेख उन्होंने अपने एक व्याख्यान में किया था, जो २ फरवरी ९०० को 'पासादेना' अमेरीका में दिया गया था –

" ... you are trying today what you call socialism ! Good things will come; but in the long run your will be a [blight] upon the race. Freedom is the watchword. Be free! A free body, a free mind, and a free soul ! That is what I have felt all my life, I would rather be doing evil freely than be doing good under bondage.'

उसी भाषण में विवेकाननन्द ने कहा था कि भारतीय मूलत: समाजवादी होते हैं। उनका आशय यह था कि भारत में मनुष्य अपनी निजी महत्त्वाकांक्षाओं, प्राथमिकताओं और अधिकारों की तुलना में सामाजिक इयत्ता को स्वीकार करता है। इसके बावजूद भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तित्व के प्रस्फुटन की पूरी सम्भावना रहती है। विवेकानन्द कानून के द्वारा समाजवादी सदृश शासन को लादने के पक्ष में नहीं थे। उसी भाषण में उन्होंने ने आगे कहा था –

'Law is death. The more of the law in a country, the worse for the country ... The more of law you make, the more of police and socialism, the more of blackguards there are.'

संकीर्ण वृत्तियों तथा क्षणभंगुर सम्बन्धों की सीमा से ऊपर उठकर स्वामी विवेकानन्द ने कानूनी बन्धनों और बौद्धिक समझाइशों के के बदले प्रेम को मनुष्यों के बीच सम्बन्ध का स्थायी तत्त्व माना था। ऐसा होने पर ही वह समाज बन सकता है, जिसमें व्यक्तिगत स्वाधीनता को संकुचित किए बिना सामाजिक एकता को स्वयं स्वीकार किया जा सके। ऐसे समाज में वे सब धारणाएँ विकसित होंगी, जिन्हें किसी तरह के समाजवादी नियमों के द्वारा रोपा नहीं जा सकता। वह सम्भावित समाज शाश्वत वैश्विक मूल्यों को अंगीकार करेगा, जो करना कानून के लिए सम्भव नहीं है। विवेकानन्द ने ऐसे सम्भावित समाज की परिकल्पना अद्वैतवाद से प्रेरित होकर की थी। सारे संसार में मनुष्य का एकत्व कोई आध्यात्मिक अमूर्तता नहीं है। वह मनुष्य की क्षमताओं के लिये कोई असंभाव्यता भी नहीं है। विवेकानन्द जानते थे कि उसे व्यवहार में लाना साधारण व्यक्तियों के लिये बहुत कठिन है। इसलिए उन्होंने समाज के सक्षम और उच्च वर्ग से पहले अनुरोध किया कि वह वेदान्तवादी अद्वैत सम्भावनाओं का सामाजिक स्तर पर प्रयोग प्रारम्भ करें। इस तरह की सम्भावनाएँ पश्चिमी दार्शनिकों के लिए भी तब तक सम्भव नहीं हुई थीं। पश्चिम के एक विचारक जेराल्ड हर्ड ने कहा है –

'When we see all mankind as parts of the divine body, then and then only will all, even the humblest have the one true guaranty of their rights, the right to be protected and to be helped develop to the highest.' ❍❍❍

अगस्त माह के जयन्ती और त्योहार

१२	स्वामी रामकृष्णानन्द
१५	स्वतन्त्रता दिवस
१६	योगी अरविन्द
१९	नागपंचमी
२२	तुलसीदास जयन्ती
२९	स्वामी निरंजनानन्द
२९	रक्षा बन्धन

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में श्रीमद्भगवद्गीता का योगदान

डॉ. भरत कुमार, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

विश्व की कालजयी रचनाओं में श्रेष्ठतम श्रीमद्भगवद्-गीता अपने अलौकिक और लोकोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान के कारण प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति और काल में सम्पूर्ण मानव जाति का मार्गदर्शन करती रही है। भारतीय धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य की प्रतिनिधिभूत श्रीमद्भगवद्-गीता भारतीय चिन्तन एवं मनीषा का चरमोत्कर्ष है। श्रीमद्भगवद्-गीता न केवल धर्मशास्त्र अपितु आचारशास्त्र भी है। आचार सम्बन्धी समस्याओं का जितना सुन्दर वर्णन गीता में है, संसार के किसी अन्य शास्त्र में दुर्लभ है। जिस पृष्ठभूमि पर जिस उद्देश्य को लेकर महासमर के मध्य में उसकी पूर्व वेला पर गीता का उपदेश हुआ है, ऐसा दुर्लभ दृष्टान्त विश्व साहित्य में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। महाभारत काल और भारतीय स्वाधीनता संग्राम दोनों काल की परिस्थितियों में बहुत अधिक समानता थी। अत्याचार, अनाचार, बलात्कार, लूट और हत्या सामान्य घटनाएँ थी। स्वजनासक्ति, शरीरासक्ति और प्राण हानि के भय से व्यक्ति अपना कर्तव्य और स्वाभिमान दोनों खो चुका था, उसकी आत्मिक शक्ति क्षीण हो चुकी थी, दासता उसकी नियति बनती जा रही थी, ऐसी स्थिति में गीता का वह कर्तव्योपदेश जो भगवान ने अर्जुन को दिया था, उसका सदुपयोग दीन-हीन एवं पराधीन भारत को दासता से मुक्त कराने के लिये किया जा सकता है, यह भारतीय चिन्तकों एवं मनीषियों की दृष्टि से ओझल न रहा। इसमें इस बात का स्पष्ट निर्देश है कि यदि किसी आततायी सत्ता अथवा व्यक्ति के द्वारा समाज, राष्ट्र एवं मानवीय मूल्यों को हानि पहुँचती है, तो उस आततायी सत्ता या व्यक्ति का समष्टि के कल्याण के लिए प्रतिकार करना चाहिए, भले ही वह सत्ता अथवा व्यक्ति अपने सगे-सम्बन्धी क्यों न हो। यही मानव धर्म है। भारतीय चिन्तकों ने गीता के इस सन्दर्भ को ग्रहण कर, राष्ट्रधर्म से जोड़कर जनता को परिणाम की चिन्ता किये बिना देश-सेवा और राष्ट्रोन्नयन के लिये प्रेरित किया। यह वह काल था, जिसमें न केवल गीता ने भारतीय चिन्तकों को प्रभावित किया, बल्कि तत्कालीन मनीषियों की दृष्टि ने भी गीता को प्रभावित किया। गीता को भारतीय स्वाधीनता संग्राम के केन्द्र बिन्दु में लाने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को जाता है। स्वामीजी ने युवाशक्ति को राष्ट्रनिर्माण में लगाने का आह्वान करते हुए कहा, – "संसार में कोई पाप है, तो वह है दुर्बलता, दुर्बलता दूर करो, दुर्बलता ही मृत्यु है। हमारे देश को जिन वस्तुओं की आवश्यकता है वे हैं – लौह निर्मित मांसपेशियाँ, फौलाद की नाड़ियाँ और ऐसी प्रबल मन:शक्ति जिसे रोका न जा सके।"[१] स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित निर्भयता का यह सिद्धान्त गीता से प्रभावित है। गीता में भगवान ने कहा है –

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।।[२]

अर्थात् कायर मत बनो, हृदय की तुच्छ दुर्बलता का परित्याग कर, स्वधर्म-पालन हेतु युद्ध करो, जिससे न्याय धर्म की स्थापना हो।

श्रीअरविन्द ने संघर्ष की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा कि युद्ध मनुष्य की नियति और संघर्ष मनुष्य का स्वभाव और कर्म है। इस संसार में जो कुछ भी नवीनता है, वह संघर्ष का ही परिणाम है। इस सृष्टि में संहार के बिना कोई भी निर्माण कार्य सम्भव नहीं है। अहिंसा के जिस सिद्धान्त को सर्वोत्तम धर्म कहकर संघर्ष के क्षेत्र में उपस्थित किया जाता है उसका सर्वथा पालन असम्भव है। मनुष्य को एक योद्धा के रूप में स्वभाव और कर्त्तव्य को मानकर उसका आकलन करना होगा। युद्ध का एक नैतिक और वीरोचित भाव है – दीन-दुर्बलों एवं पीड़ितों की रक्षा तथा जगत् में न्याय और धर्म की स्थापना।[३] जिस समाज में मनुष्य रहता है और पलता है, उसकी रक्षा करना और उसके लिए संघर्ष करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।[४] उनकी दृष्टि में राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये हिंसा का मार्ग भी अपना सकता है। इसके लिए उन्होंने गीता के क्षात्रधर्म का अनुसरण उचित माना है।[५] भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में गरमदल के लब्धप्रतिष्ठित नेता बालगंगाधर तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन को दिशा देने के लिए कर्मयोग शास्त्र की रचना की तथा गीता के सन्देश को जनसाधारण में पहुँचाने के उद्देश्य से गणेशोत्सव और शिवाजी महोत्सव को महाराष्ट्र में पुनर्जीवित किया।[६] उन्होंने कहा कि – किसी समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए आततायी पुरुष का विनाश करने से अहिंसा परमो धर्म: की नीति की उपेक्षा नहीं होती।[७] जब देश पराधीन

हो, तो स्वराज्य के लिये सचेष्ट होना ही गीता के कर्मयोग में बताये गये कर्तव्य की पूर्ति है। कर्म का राष्ट्रीय फल स्वराज्य है।[८] अहिंसा, सत्य, दया आदि धर्म हैं, किन्तु पूर्णतया निरपेक्ष नहीं हैं, परिस्थिति सापेक्ष हैं, समय आने पर इनमें भी कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म का विचार करना पड़ता है। तिलक का मानना था कि यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार व्यक्ति ज्ञान और भक्तियोग से भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, किन्तु फिर भी कर्म की प्रधानता है। श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवदगीता में कहा है, मुझे तीनों लोकों से कुछ नहीं चाहिए। फिर भी मैं कर्म करता हूँ, क्योंकि यदि मैं कर्म नहीं करूँगा, तो जगत नष्ट हो जाएगा। इसके आधार पर तिलक ने कहा, यदि मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे जगत के हित को ध्यान में रखते हुए निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। इस प्रकार तिलक ने जनता के सामने कर्म का महत्त्व रखा, ताकि वह देश की स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष कर सके। उनका मानना था कि भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा आधुनिक भारत का निर्माण कर्म के आधार पर ही सम्भव है। निश्चित यह तिलक की महान देन थी।

राजनीति में अध्यात्म का समन्वय करनेवाले गीता के अनन्य उपासक एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम के स्तम्भ महात्मा गाँधी ने गीता को माता की संज्ञा दी। उन्होंने कहा कि गीता का मूल बिन्दु अनासक्ति है तथा ज्ञान, भक्ति और कर्म इसके चारों ओर घूमते हैं। इसकी प्राप्ति सत्य और अहिंसा के द्वारा ही की जा सकती है। गाँधीजी ने गीता की शिक्षाओं का मुख्य रूप से उपयोग भारतीय जन-सामान्य को कर्मशील बनाने के लिए किया। भारत की स्वतन्त्रता के लिए गाँधी द्वारा चलाये गये समस्त आन्दोलनों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। असहयोग आन्दोलन गीता के निष्काम कर्मयोग का जीवन्त दृष्टान्त है। अपनी शारीरिक सुख-सुविधा और व्यक्तिगत स्वार्थों की चिन्ता किये बिना किसी महान उद्देश्य के प्रति अपनी समस्त ऊर्जा और शक्ति सक्रियता को समर्पित करना गाँधी के असहयोग का मूल तत्त्व है, इसकी प्रेरणा उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता से मिली हुई प्रतीत होती है। क्योंकि –

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्वा।।[९]

गीता के पन्द्रहवें अध्याय का यह श्लोक उनके आन्दोलन का स्रोत था, ऐसा प्रतीत होता है। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि जिस प्रकार इन्द्रियों का विषयों के साथ असहयोग करने से विषय स्वयं निवृत्त हो जाते हैं, उसी प्रकार यदि अंग्रेजों के साथ असहयोग का मार्ग अपनाया जाय, तो अंग्रेजी सत्ता स्वयं धराशायी हो जायेगी। गाँधीजी का यह प्रयोग पूर्णतया सफल भी रहा। उन्होंने गीता के यज्ञ को श्रम और चरखा से जोड़कर लोगों को समष्टि कल्याण के लिए कर्म करने की प्रेरणा दी। उस समय भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन पर गीता का इतना प्रभाव था कि पूज्य विनोबाजी जेल में भी सत्याग्रही कैदियों को गीता का उपदेश दिया करते थे। विनोबा का भूदान, सम्पत्ति दान, ग्रामदान यज्ञ जिसमें स्वामित्व के दान की बात समष्टि कल्याण के लिए कही गयी थी और इसका प्रभाव अत्यन्त व्यापक था, यह गीता के यज्ञार्थ कर्म की ही देन थी।[१०] उपर्युक्त विषय के सन्दर्भ में यदि हम क्रान्तिकारियों के इतिहास पर दृष्टि डालें, तो जो परिदृश्य उपस्थित होता है, उसमें गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। देश की स्वतन्त्रता के लिए मातृभूमि की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति देनेवाले अधिकांश वीरों ने गीता के अनुसार अपने जीवन का निर्माण किया, ऐसे क्रान्तिकारी या स्वतन्त्रता सेनानी जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने फाँसी दी, उनमें से अधिकांश व्यक्तियों की निष्ठा गीता पर अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देती है। जैसे खुदीराम बोस, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, सूर्यसेन आदि अनेक क्रान्तिकारी। ये वे क्रान्तिकारी हैं, जिन्होंने गीता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मृत्यु पर्यन्त अपने साथ रखा। जब खुदीराम बोस से पूछा गया, तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है? तो उसका उत्तर था कि मरते समय मैं गीता अपने साथ रखना चाहता हूँ। गीता के प्रति ऐसी निष्ठा के बहुत से उदाहरण इतिहास में मिलते हैं, जो व्याकुलतापूर्ण प्रश्न उत्पन्न करते हैं कि गीता के प्रति ऐसी निष्ठा क्यों? राष्ट्र के लिये अपनी आहुति देनेवालों ने गीता में ऐसा क्या पाया, जिससे वे इतना प्रभावित हुए कि मृत्यु समय में भी केवल गीता की कामना की।[११] राष्ट्र के लिये सबसे कम उम्र में प्राणों का बलिदान करनेवाले सबसे युवा क्रान्तिकारी खुदीराम बोस ने फाँसी से पूर्व अपनी अन्तिम इच्छा में गीता को अपने पास रखने की अनुमति माँगी। फाँसी का आलिंगन करते समय खुदीराम के हाथ में गीता थी। इस वीर सपूत के दाह-संस्कार के समय उपस्थित असंख्य भीड़ ने उसकी चिताभस्म को मस्तक से लगाकर सच्ची

श्रद्धांजलि दी।[१२] इस प्रकार इस वीर ने कर्तव्यनिष्ठा और बलिदान द्वारा देशवासियों में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की सुलगती आग को हवा दे दी। इसी प्रकार बमरौली डकैती काण्ड के प्रमुख षड्यन्त्रकारी रोशन सिंह ने फाँसी से पूर्व अपने मित्र को एक पत्र लिखा, जिसमें गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है – "इस सप्ताह के भीतर ही फाँसी होगी। इस बीच ईश्वर-भजन का खूब सुयोग मिला। मेरा मोह छूट गया। कोई वासना न रही। ... हमारे शास्त्रों में लिखा है, जो व्यक्ति धर्मयुद्ध में प्राण देता है, उसकी वही गति होती है, जो जंगल में रहकर तपस्या करनेवाले ऋषि की।" फाँसी के दिन ठाकुर साहब ने कुछ देर तक गीता का पाठ किया और फिर गीता हाथ में लेकर फाँसी के तख्ते की तरफ चल पड़े। इस बात से स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता ने इन कर्मवीरों के हृदय से मृत्यु के भय को निकालकर कर्तव्य का मार्ग दिखाया।

निरपराध भारतवासियों के प्रति अत्याचार एवं अनुचित आचरण का प्रतिकार करते हुए तत्कालीन 'प्लेग निवारण समिति' के प्रधान श्री रैण्ड का जो वध किया गया, उसके पीछे भी कहीं-न-कहीं गीता के द्वारा प्रतिपादित अन्याय के निःस्वार्थ प्रतिकार की ही प्रेरणा थी। उन्होंने प्लेग से ग्रस्त परिवारों में अपने सैनिकों को भेजकर उनके साथ किये गये दुर्व्यवहार एवं दुराचार का अनुमोदन किया था। इस बात का प्रमाण 'केसरी' में १५ जून १८९७ को प्रकाशित वह लेख है, जिसमें कहा गया है – "श्रीकृष्ण का गीता में उपदेश है कि यदि कोई व्यक्ति कर्मफल की इच्छा के बिना कर्म करता है, तो उसे कोई दोष नहीं लगता।... ईश्वर ने विदेशियों को भारत का साम्राज्य ताम्रपत्र पर लिखकर नहीं दिया।... दण्डसंहिता की परिधि से बाहर आओ तथा श्रीमद्भगवद्गीता के उत्तम वातावरण में प्रवेश करो।"[१३] इसी प्रकार 'आजाद हिन्द फौज' के महान सेनानायक और अंग्रेजों से सशस्त्र लोहा लेनेवाले सुभाषचन्द्र बोस स्वयं गीता से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने बंगला में लिखा – गीता में कृष्ण ने कहा है 'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:' मैं इस उक्ति में विश्वास करता हूँ। बंगाली के लिये स्वधर्म का त्याग आत्महत्या के समान पाप है। बंग जननी तरुण संन्यासियों का दल चाहती है। भाइयो कौन-कौन आत्मबलि के लिए प्रस्तुत है ... यदि स्वदेश सेवा में प्राण विसर्जन करना पड़े तो स्वर्गद्वार तुम्हारे लिए खुला है।[१४] **'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'** गीता का यह श्लोक इस बात का प्रमाण है। इसके साथ ही निराला की एक कविता 'जागो फिर एक बार' में गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है –

तुम हो महान, तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता कामपरता ....
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिसप्त
तप्त पर आँसू बहाती है
किन्तु क्या
योग्यजन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है
स्मरण करो एक बार, जागो फिर एक बार।।१५

इसमें कवि भारतीयों के सिंह-पौरुष की याद दिलाकर गीता में जिस कर्तव्यपरायणता का निर्देश किया गया है, उसका उल्लेख करते हुए जागरण का मन्त्र फूँकता है। यह जागरण सांस्कृतिक नहीं, अपितु तत्कालीन शासकों द्वारा किये जा रहे अत्याचार के प्रति भी है। ऐसी ही कई कविताएँ भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय लिखी गयीं, जिन पर गीता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। १९३० में छपे कविता संग्रह में भी गीता का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जैसे मधुसूदन ओझा की कविता 'हिन्दू' में –

मुर्दों में संजीवनी बूटी देकर जान डालने को,
कर्मयोग का मन्त्र बताकर, निज स्वतन्त्रता पाने को,
कायर हिन्दू को मरने का, अमर पाठ सिखलाने को।

इसी सन्दर्भ में यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि भारतीय स्वतन्त्रता संघर्षकाल में अनेक ऐसे क्रान्तिकारी संगठनों का अभ्युदय हुआ, जिनका आधार गीता थी। कुछ संगठनों में क्रान्तिकारी विचारधारा में सम्मिलित होनेवाले नवागन्तुकों के लिए विवेकानन्द साहित्य, श्रीमद्भगवद्गीता और बंकिम चट्टोपाध्याय के आनन्द मठ का अध्ययन और अनुशीलन अनिवार्य था।[१६] यह ऐसा समय था, जब भारत के हिन्दू विप्लवी एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में 'आनन्दमठ' लेकर दीक्षा-मन्त्र धारण करते थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'भारत स्वशासन समिति', जिसका उद्देश्य देश की आजादी था, वी. डी.

सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा इसके क्रान्तिकारी सदस्य थे।[१७] इन सभी पर गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मदनलाल ढींगरा ने फाँसी से पूर्व अदालत में जो बयान दिया, उस पर गीता का स्पष्ट प्रभाव था।[१८] शहीद उधम सिंह ने जालियावाला बाग हत्याकाण्ड के दोषी डायर का वध किया तथा गदर आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले सोहन सिंह भाकना भी गीता से प्रभावित थे, ऐसा प्रतीत होता है।[१९] चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, सूर्यसेन, राजेन्द्र लाहिड़ी, यतीन्द्रनाथ गुप्त ऐसे क्रान्तिवीर थे, जिन्हें किसी-न-किसी रूप में गीता से प्रेरणा अवश्य प्राप्त हुई। भगत सिंह गीता से प्रभावित थे, इसका पता उनके द्वारा पिता को लिखे पत्र में चलता है, जिसमें उन्होंने 'गीता रहस्य' भेजने की प्रार्थना की थी।[२०] रामप्रसाद बिस्मिल ने फाँसी से कुछ दिन पूर्व लिखा कि अन्तिम समय निकट है गीता का अध्ययन करते हुए सन्तोष है –

जो कुछ किया सो तै किया मैं कुछ कीन्हा नाहि
जहाँ कहीं कुछ मैं किया तुमही थे मुझ माहि ।।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्तवा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।

जीवन पर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। हमने लाभ-हानि, जय-पराजय के विचार से क्रान्तिकारी दल में भाग नहीं लिया, हमने जो कुछ किया वह अपना कर्तव्य समझकर किया।[२१]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के पीछे श्रीमद्भगवद्गीता का निष्काम कर्म का उपदेश एक प्रभावी प्रेरणा के रूप में कार्य कर रहा था। वस्तुतः महाभारत के युद्ध में बात अन्ततः राज्यलाभ की नहीं रह गयी थी, उस युद्ध की प्रारम्भिक प्रेरणा भले ही वैयक्तिक अन्याय के प्रति संघर्ष की रही हो, किन्तु उसका पर्यवसान अधर्म और अन्याय के विरुद्ध धर्म और न्याय की स्थापना के लिए किये गये संघर्ष में हुआ था। पाण्डवों ने व्यक्तिगत स्तर पर बड़ी भारी क्षति उठायी थी। उत्तरा के गर्भ में पल रहे परिक्षित के अतिरिक्त उनका कोई वंशधर भी नहीं बचा था। उन्होंने अनेक प्रिय व्यक्तियों को खोया था और युद्ध के अन्त में उन्हें सम्बन्धियों के शवों से पटी हुई रणभूमि ही प्राप्त हुई थी। इस परिणाम को देखते और जानते हुए भी श्रीकृष्ण के प्रेरणा और उपदेश से वे उस सत्ता से संघर्ष करते रहे, जो दम्भ अन्याय और अत्याचार का प्रतीक बन गयी थी। वस्तुतः कृष्ण ने उस विशिष्ट युद्ध के लिये ही नहीं, अपितु ऐसे सभी अवसरों के लिए संघर्ष का आदेश दिया था, जब अधर्म धर्म पर हावी होने की चेष्टा करे। गीता का उपदेश किसी महान और सामूहिक हित के लिए अपने निजी स्वार्थों और सम्बन्धों की उपेक्षा कर अपने प्राणों की बाजी लगाकर निर्भीक भाव से संघर्ष में उतरने का है। इसी बात ने भारतीय क्रान्तिकारियों को सबसे अधिक प्रभावित और प्रेरित किया था। आत्मा की नित्यता का उपदेश उस शरीर और प्राणों का मोह खण्डित करता है, जिसके प्रति मनुष्य की सबसे अधिक आसक्ति होती है। महाभारत का युद्ध यह सिद्ध करता है कि युद्ध सैनिकों की संख्या और रणकौशल से नहीं जीता जाता। यह आत्मबल और संकल्प के प्रति निष्ठा से भी जीता जा सकता है। इसी बात के सहारे भारतीय क्रान्तिकारी आधे से अधिक विश्व पर राज करनेवाले ब्रिटिश शासन के प्रति खड़े हो सके। गीता की प्रेरणा से वे आत्मा की नित्यता में आस्था रख सके और शरीर की अवश्यम्भावी मृत्यु के प्रति उदासीन हो सके। गीता की प्रेरणा से ही वे मृत्यु-दण्ड एवं शारीरिक यातनाओं के क्षणों में भी अदम्य साहस एवं आत्मगौरव से भरे रह सके। स्वाधीनता आन्दोलन के पूरे इतिहास में और क्रान्तिकारियों के जीवन में हम व्यक्तिगत स्वार्थों की जो उपेक्षा, स्वाधीनता के महान लक्ष्य के प्रति जो समर्पण भाव देखते हैं, उसके पीछे इस महान ग्रन्थ का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. डॉ. वी.एल. फड़िया : भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृष्ट. २३ **२.** गीता - २/३ **३.** श्रीअरविन्द, गीता-प्रबन्ध, पृष्ठ ४७ **४.** वही, पृ.४८ **५.** डॉ. वी.एल. फड़िया : भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ.१२३ **६.** राममूर्ति त्रिपाठी, नवजागरण : भारतेन्दु और गुप्तजी, पृ. ३६ **७.** रामगोपाल, लोकमान्य तिलक, पृ १७२ **८.** वही **९.** गीता - १५/३ **१०.** विनोबा भावे, गीता प्रवचन, पृ. ४ **११.** आशुतोष आङ्गिरस के लेख से **१२.** डब्ल्यू. डब्ल्यू. बालसंस्कार डाट काम, ३०/०३/१२ **१३.** बी.एल. ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. ३१० **१४.** आजादी के दस्तावेज, भाग - २ पृ. १०८ **१५.** गीता - २ / ३७ **१६.** बच्चन सिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ. १२१ **१७.** स्वामी विवेकानन्द, प्राच्य एवं पाश्चात्य, पृ.२४ **१८.** डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, आधुनिक भारत में राजनैतिक प्रतिरोध, पृ. २३४ **१९.** भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, पृ. २०९ **२०.** हिन्दी, भारत डिस्कवरी डाट ओआरजी, ३०/०३/१२ **२१.** विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ. ११२ **२२.** डॉ. भगवान सिंह राणा, शहीद भगत सिंह, पृ. ४९ **२३.** डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. ज़टलैण्ड डाट काम, ३०/०३/१२ (रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा – फाँसी की कोठरी से)

एकान्तवास तथा विवेक

श्रीरामकृष्ण परमहंस

कोई एकदम फट से जनक राजा नहीं बन जाता। जनक राजा ने निर्जन में बहुत तपस्या की थी। संसार में रहते हुए भी बीच-बीच में एकान्तवास करना चाहिए। गृहस्थी से बाहर निकलकर एकान्त में अकेले रहकर भगवान के लिए तीन दिन ही रोया जाए तो वह भी अच्छा है। यहाँ तक कि यदि अवसर पाकर एक ही दिन निर्जन में रहकर भगवच्चिन्तन किया जाए, तो वह भी अच्छा है। लोग स्त्री-पुत्रों के लिए घड़ा भर आँसू बहाते हैं, ईश्वर के लिए भला कौन रोता है? बीच-बीच में निर्जन में रहकर भगवत्प्राप्ति के लिए साधना करनी चाहिए। संसार के भीतर, विशेषकर कामकाज की झंझट में रहकर प्रथम अवस्था में मन को स्थिर करते समय अनेक बाधाएँ आती हैं। जैसे रास्ते के किनारे लगाया हुआ पेड़; जिस समय वह पौधे की स्थिति में रहता है, उस समय घेरा न लगाने पर गाय-बकरियाँ खा जाती हैं। प्रथम अवस्था में घेरे की आवश्यकता होती है, किन्तु बाद में तना मजबूत होने पर घेरे की आवश्यकता नहीं रहती। फिर उसे हाथी बाँधने पर भी कुछ नहीं होता।

रोग तो हुआ सन्निपात का, पर जिस कमरे में सन्निपात का रोगी है, उसी कमरे में पानी का घड़ा और इमली का अचार रखा है। यदि रोगी को आराम पहुँचाना चाहते हो तो पहले उसे उस कमरे से हटाना होगा। संसारी जीव मानो सन्निपात का रोगी है; और विषय है पानी का घड़ा। विषयभोग-तृष्णा मानो जल-तृष्णा है। इमली, अचार की बात केवल सोचते ही मुँह में पानी आ जाता है, वे वस्तुएँ पास नहीं लानी पड़ती। ऐसी वस्तुएँ रोगी के कमरे में ही रखी हैं। संसार में स्त्री-सहवास ऐसी ही वस्तु है। इसीलिए निर्जन में जाकर चिकित्सा कराना आवश्यक है।

विवेक-वैराग्य प्राप्त करके संसार में प्रवेश करना चाहिए। संसारसमुद्र में काम-क्रोधादि मगर हैं। शरीर में हलदी मलकर पानी में उतरने पर मगर का डर नहीं रहता। विवेक-वैराग्य ही हलदी है। सत्-असत् विचार का नाम विवेक है। ईश्वर की सत् हैं, नित्यवस्तु हैं, बाकी सब असत्, अनित्य, दो दिन के लिए है – यह बोध ही विवेक है, और ईश्वर के प्रति अनुराग चाहिए, प्रेम, आकर्षण चाहिए – जैसा गोपियों का कृष्ण के प्रति।... राधाकृष्ण को मानो या न मानो, पर उनके इस आकर्षण को तो ग्रहण करो! ईश्वर के लिए इस प्रकार की व्याकुलता हो, इसके लिए प्रयत्न करो। व्याकुलता के आते ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले।
संयुक्तमेकतां याति तथाऽऽत्मन्यात्मविन्मुनिः।।५६६।।

अन्वय – यथा क्षीरं क्षीरे, तैलं तैले, जलं जले क्षिप्तं संयुक्तं एकतां याति तथा आत्मविद् मुनिः आत्मनि (याति)।

अर्थ – जैसे दूध को दूध में, तेल को तेल में, जल को जल में डालने पर वह उससे मिलकर एकाकार हो जाता है, वैसे ही आत्मज्ञानी पुरुष आत्मा के साथ अभिन्न हो जाता है।

एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम्।
ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यतिर्नावर्तते पुनः।।५६७।।

अन्वय – एवं एषः यतिः सन्मात्रत्वं अखण्डितम् विदेहकैवल्यम् ब्रह्मभावं प्रपद्य पुनः आवर्तते न।

अर्थ – इस प्रकार यह ब्रह्मज्ञानी यति अखण्ड सत्स्वरूपता, ब्रह्मभाव या विदेह मुक्ति को पाकर पुनः इस संसार-चक्र में नहीं लौटता।

सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्ष्मणः।
अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद् ब्रह्मणः कुत उद्भवः।।५६८।।

अन्वय – सद्-आत्म-एकत्व-विज्ञान-दग्ध-अविद्यादि-वर्ष्मणः अमुष्य ब्रह्मणः ब्रह्मभूतत्वात् उद्भवः कुतः?

अर्थ – (क्योंकि) सत्स्वरूप ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व-बोध के फलस्वरूप जिनकी अविद्या आदि से उत्पन्न होनेवाले तीनों (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) शरीर दग्ध हो गये हैं, उनकी ब्रह्मीभूत अवस्था के फलस्वरूप (पुनर्जन्म नहीं होता), ब्रह्म का पुनर्जन्म भला कहाँ से होगा?

मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः।
यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ।।५६९।।

अन्वय – बन्धमोक्षौ मायाक्लृप्तौ। वस्तुतः स्वात्मनि न स्तः यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्प-आभास-विनिर्गमौ।

अर्थ – बन्धन तथा मोक्ष – दोनों ही माया द्वारा कल्पित हैं। अपनी आत्मा में इन दोनों का वास्तविक अस्तित्व उसी प्रकार नहीं है, जैसे कि निष्क्रिय रस्सी में सर्प की भ्रान्ति आती है और चली भी जाती है।

बड़ी निष्ठासहित साधन-भजन करते जाओ। एक दिन भी नागा मत करना – चाहे अच्छा लगे या न लगे, नियमित समय पर आसन लगाकर बैठना। यदि ऐसी निष्ठा के साथ कम से कम तीन वर्ष भी कर सको, तो देखोगे कि भगवान पर प्रेम आएगा। तब आप ही आप भगवान को पुकारने की इच्छा होगी, प्रयत्न करके भी मन को दूसरी ओर नहीं ले जा सकोगे।

स्वामी ब्रह्मानन्द (श्रीरामकृष्ण के शिष्य)

एक भारतीय संन्यासी का चीन में परिव्रजन

स्वामी दुर्गानन्द

(स्वामी दुर्गानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ, हावड़ा के कुलसचिव हैं । उन्होंने चीन के यन्ताई विश्वविद्यालय, नान्जींग विश्वविद्यालय, हांगकांग और झिजीयांग विश्वविद्यालय के निमन्त्रण पर मई, २०१२ से २०१३ तक ५ बार यात्रा की । इन यात्राओं में उन्होंने चीन के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थलों का भी भ्रमण किया और वहाँ के भौतिक विकास, व्यवस्था और तकनीकि की विशेषताओं को बड़ी गहराई से अवलोकन किया । उनके इस रोचक और ज्ञानमय यात्रा-वृतान्त को 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लिये प्रस्तुत किया जा रहा है । – सं)

भूमिका

चीन हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए एक रहस्यमय देश प्रतीत होता है । यह देश विगत सौ वर्षों से मानो बाँस के परदे में छिपा अन्य देशों के लोगों को लगभग अज्ञात सा है। किन्तु इस रहस्य का उद्घाटन हमारे लिए सुखद, लाभप्रद और शिक्षाप्रद होगा। भारत की तरह यह उत्तर-पूर्वीय पड़ोसी देश भी महाद्वीप के समान है, इसकी आबादी घनी और सभ्यता प्राचीन है। गरीबी से ऊपर उठने के लिए यह देश भी बड़े उत्साह से परिश्रम कर रहा है। यह समानता चीन को भारत के मुख्य सहयोगी के रूप में, दोनो देशों के उज्वलतर भविष्य की सम्भावना का संकेत करती है – यह मिलन अर्थ-व्यवस्था में सहयोगी, संस्कृति में सामंजस्यता और वैश्विक मुद्दों को समसामयिक बनाने में सहायक हो सकता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एशिया अपने आप में अन्य पाश्चात्य देशों से पृथक है। पाश्चात्य संस्कृति की विशेषता है – विश्लेषण, पृथक्करण और विरोधार्थक तत्त्वों में भेद-दृष्टि। जबकि एशियाई दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि संश्लेषण, समन्वय, एकीकरण, और समरसता की है। इस प्रकार एशिया केवल तर्क के स्थान पर अन्तर्प्रेरणा का भी अनुसरण करता है। पाश्चात्य संस्कृति साधारणत: तर्कप्रधान शैली को प्राथमिकता देती है, जबकि एशियाई लोग स्वप्नद्रष्टा, सहृदय, सुसंस्कृत, कवि, कोमल, और भावुक होते हैं। इनके अन्दर मानवीय उत्कर्ष की प्रचुर सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। भावना और अन्तर्प्रेरणा मानवीय-विकास के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। पाश्चात्य जगत बौद्धिक है, जबकि एशिया अबौद्धिक न होते हुए भी बुद्धि के अतीत आध्यात्मिक है।

आइए, भारत के इस पड़ोसी देश को समझने का प्रयत्न करें। प्रस्तुत लेख के लेखक ने पिछले दो सालों में पाँच बार चीन देश की यात्रा की। अपनी प्रत्येक यात्रा में उसने तीन-चार सप्ताह इस देश का अवलोकन किया। इस यात्रा में उसने साठ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थानों तथा पश्चिम में लासा से लेकर पूर्व के शंघाई तक और उत्तर में हार्बिन से लेकर दक्षिण में कुन्मिग व हाँगकाँग तक के चालीस पवित्र-स्थलों का भ्रमण किया। यह लेख प्रत्यक्ष अवलोकन एवं अनुभव पर आधारित है और पाठक को प्रस्तुत लेख द्वारा उस बृहत् एशियाई देश की आभासमय यात्रा कराने का प्रयास किया गया है, जो भारत का पड़ोसी देश है।

चीन देश में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम हम यह पाएँगे कि इस देश ने बड़े प्रभावी रूप से स्वयं का आधुनिकीकरण किया है। शहरों की बात यदि छोड़ भी दें, तो बहुत से गाँवों तक आपको अन्य विकसित देशों की तरह अथवा उससे भी बेहतर देखने को मिलेंगे। वहाँ की सुसज्जता, स्वच्छता, तकनीक, परिवहन, बाजार, गलियाँ, अस्पताल, विश्वविद्यालय, उद्यान, रास्ते, फुटपाथ और कार्यप्रणाली को देखने से ही इस बात का प्रमाण मिल जाता है। चीन में रहने वाले भारतीयों से मैंने सुना कि अभी कुछ ही वर्षों पहले यहाँ के लोग गँवारु माने जाते थे और उनकी जनसंख्या मानों बृहत् ग्राम-समूह हो। यह विशाल परिवर्तन कुछ ही समय पहले हुआ है। आइए, हम देखें कि आज यह देश किन ऊँचाइयों पर स्थित है। यह लेख दो भागों में है – प्रथम भाग में चीन की विशाल और असाधारण संरचनात्मक-प्रगति (infrastructural development) का वर्णन है और द्वितीय भाग में चीन के धार्मिक और आध्यात्मिक इतिहास का वर्णन है।

संरचनात्मक-प्रगति

रेलवे – १९९३ में चीन में ट्रेनों की औसत गति ४८ कि.मी. प्रति घण्टा रहती थी। तत्पश्चात १९९७, १९९८, २०००, २००१, और २००४ में रेलवे उन्नयन के अन्तर्गत हुए पाँच गति-वर्धन उपक्रमों द्वारा, ट्रेनों की sub-high speed १६० कि.मी. तक पहुँची।

तदनन्तर नई तकनीकी आयात से ट्रेन की गति को २००४ में २०० कि.मी. प्रति घण्टे, २००७ में २५० कि.मी. प्रति घण्टे और २००८ में ३०० कि.मी. प्रति घण्टे तक लाया गया। इसके बाद चीन काफी आत्म-निर्भर हो गया और इसकी नवीकरण की प्रक्रिया अभी भी चल रही है। यह ध्यान देने योग्य है कि चीन में वर्तमान चल रही शीघ्रगामी ट्रेन (high speed trains) की गति जेट एयर-क्राफ्ट की उड़ान (take-off) और अवतरण (landing) गति से भी अधिक है। विमान-चालन के समय ये दो स्थितियाँ भूमि-प्रभाव (ground effects), वायु-अवरोधन (wind excitation) और गतिज परिणाम (dynamic effects) के कारण संवेदनशील होती हैं। शीघ्रगामी ट्रेन को भूमि से सटे रहने के कारण इस नाजुक स्थिति को अपनी पूरी यात्रा के समय बनाए रखना पड़ता है। इसलिए शीघ्रगामी ट्रेनों की कार्यप्रणाली उच्च तकनीकी ज्ञान से सम्बन्धित है।

शीघ्रगामी ट्रेन की पटरियों की रचना विशिष्ट प्रकार की होती है, इसका आधुनिकीकरण अत्युच्च गति क्षमता को ध्यान में रखकर किया गया है। इसकी सामान्य गति (cruising speed) २०० से २५० कि.मी. प्रति घण्टा है और इसके लिए विशेष सचल स्टॉकों (specially built rolling stock) का निर्माण किया जाता है। चीन में वर्तमान में यात्रियों के लिए दो प्रकार की शीघ्रगामी ट्रेन हैं, पहली बुलेट ट्रेन, जिसकी गति लगभग २५० कि.मी. प्रति घण्टे की है और दूसरी मॅग्लेव ट्रेन, इसकी गति ४५० कि.मी. प्रति घण्टे की है।

बुलेट ट्रेन

बुलेट ट्रेन सामान्यत: हम जिन पटरियों से परिचित हैं, उन पर चलती हैं। किन्तु ये पटरियाँ विशिष्ट पद्धति से बनाई गईं अखण्ड (continously welded) रहती हैं।

इस ट्रेन में इंजिन नहीं होता है, किन्तु प्रत्येक पहिये और एक्सल पर मोटरें लगी रहती हैं। विद्युत ऊर्जा ऊपर लगाई गईं विशिष्ट पेन्टोग्रॉफ युक्त तारों से खींची जाती है। यह एक बेजोड़ रचना है, क्योंकि २५००० वोल्ट वाली तार से यदि थोड़ा भी सम्पर्क टूट जाय, तो ट्रेन में आग लगने की सम्भावना हो सकती है। मोड़ों पर अपकेन्द्री बल (centrifugal force) को दूर करने के लिए इस ट्रेन में अत्याधुनिक द्रवचालित नमित प्रणाली (hydraulic tilting mechanism) का उपयोग किया गया है। इससे यह ट्रेन मोड़ों पर अथवा सुरंग में जाते समय भी धीमी नहीं होती। ट्रेन-चालक की सुविधा के लिए एक विशेष डिब्बे में सिग्नल-प्रणाली (in-cab signaling system) होती है क्योंकि अत्युच्च गति क्षमता की ट्रेनों में मानवीय प्रत्युत्तर के लिए पर्याप्त समय न होने के कारण सामान्य सिग्नल व्यवस्था प्रभावहीन होती है।

चीन में बुलेट ट्रेन का वर्तमान परिवहन मार्ग लगभग १४००० कि.मी. है और २०२० तक इसको ३५००० तक बढ़ाने की योजना है। वर्तमान समय में नई बुलेट ट्रेन के निर्माण की लागत प्रति मीटर ६ से १० लाख रुपये है।

मॅग्लेव ट्रेन

हमने देखा कि बुलेट ट्रेन सामान्य पटरियों पर चलती है, जबकि मॅग्लेव ट्रेन की पटरियाँ नहीं होतीं। यह चुम्बकीय शक्ति के प्रभाव से भूमि से १ से.मी. ऊपर उड़कर चलती है। यह ट्रेन स्थिर अर्थात् रुकी हुई स्थिति में भी भूमि के ऊपर तैर सकती है। स्वाभाविक है कि इसके चक्के नहीं होते। इस तरह कर्षण अवरोध (traction resistance) न होने से मॅग्लेव ट्रेन बुलेट ट्रेन

की अपेक्षा अधिक वेग से चल सकती है। इस ट्रेन में भी कोई इंजिन नहीं होता। चुम्बकीय शक्ति का कुछ अंश ट्रेन को आगे खींचता है। बुलेट ट्रेन की तरह इस ट्रेन के ऊपर तारें नहीं होतीं। ट्रेन के मार्ग से ही बिजली देने की व्यवस्था होती है। वर्तमान समय में मॅग्लेव ट्रेन के निर्माण की लागत प्रति मीटर २० से ३० लाख रुपये है।

प्रसिद्ध 'शंघाई मॅग्लेव' यात्रियों के लिए विश्व में प्रथम अत्युच्च गति क्षमता वाला मॅग्लेव है। इसकी परिवहन सेवा २००४ में आरम्भ हुई थी। सम्पूर्ण यात्रा के समय इस ट्रेन की गति ४३० कि.मी. प्रति घण्टे की रहती है।

यात्रा के अनुभव

चीन में शीघ्रगामी ट्रेन में यात्रा करना सचमुच में एक रोमांचकारी अनुभव है। यह यात्रा सुविधाजनक, आरामदायक और शीघ्र पहुँचाने वाली है। इसमें टिकिट प्राय: उपलब्ध रहती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ट्रेन हमें सीधे शहर के बीचो-बीच ले जाती है। जबकि हवाई-अड्डे शहर से काफी दूर स्थित होते हैं और सुरक्षा-जाँच आदि के लिए वहाँ पहले पहुँचना पड़ता है। इसके अलावा हवाई-अड्डों में खाद्य-पदार्थ एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी मँहगी रहती हैं। इसलिए विमान की अपेक्षा इन शीघ्रगामी ट्रेनों से यात्रा करना कई दृष्टि से अच्छा है।

चीन की 'जी' श्रेणी की बुलेट ट्रेन की अधिकतम गति

३५० कि.मी. प्रति घण्टा है, जबकि 'डी' श्रेणी की ट्रेन २५० कि.मी. प्रति घण्टे से चलती है। ट्रेनों की निरन्तर सेवाएँ भी बड़ी अच्छी हैं। उदाहरणार्थ, शंघाई से बीजिंग की दूरी १३१८ कि.मी. है, वहाँ जाने के लिए सुबह ७ बजे से दोपहर १२ बजे के बीच तक १९ बुलेट ट्रेनों की सेवाएँ हैं। बुलेट ट्रेन दिखने में विमान जैसी है और उसमें यात्रा करना मानो विमान में यात्रा करने जैसा है। ट्रेन के अन्दर दो सीटों के बीच का अन्तर १०० से.मी (३९ इन्च) है, यह इतना सुविधाजनक है कि यदि आप अपनी सीट से उठकर कहीं जाना चाहें, तो आपके पास बैठे सहयात्री को उससे कोई भी परेशानी नहीं होगी। विशेष बात यह है कि बुलेट ट्रेन में आपकी सीट हमेशा यात्रा की दिशा में होगी। यह इस तरह सम्भव है कि ट्रेन के स्टेशन पर पहुँचते ही सीटों की दिशा ऑटोमेटिक बदल जाती हैं अथवा उन्हें हाथ से ट्रेन की दिशा में घुमा दिया जाता है। प्रत्येक ट्रेन में भोजनयान और भोजनगृह (pantry and dining car) होता है। रात में चलने वाली ट्रेनों में सोने के लिए सीटों की व्यवस्था भी होती है।

प्रति घण्टे ४३० कि.मी. वेग से चलने वाली मॅग्लेव ट्रेन से आप चित्ताकर्षक दृश्य देख सकते हैं। मोटरगाड़ियाँ, नजदीक के एक्सप्रेस रास्ते, शहरी-रास्ते, घर आदि को मानो आपकी ट्रेन पीछे छोड़ती हुई तेज गति से दौड़ रही हो ! मॅग्लेव ट्रेन के सभी डिब्बे आपस में एक साथ जुड़े हुए रहते हैं, इसलिए आप यदि चाहें तो सीधे चालक की केबिन तक पहुँच सकते हैं और चालक-केबिन और आपके बीच लगे हुए काँच से आप आगे जाने वाले पूरे मार्ग को देख सकते हैं। इस ट्रेन में कभी भी भीड़ नहीं होती।

एक्स्प्रेस ट्रेन

भारत के परम्परागत ६५००० कि.मी. रेलमार्ग की तुलना में चीन का रेलमार्ग लगभग १ लाख कि.मी. है। 'जेड' और 'टी' श्रेणी के ट्रेनों की गति क्रमश: १६० और १४० कि.मी. प्रति घण्टा है। ट्रेनों की आन्तरिक सजावट आधुनिक है, सभी ट्रेनें दिखने में नई हैं और कल-पुर्जों के ऊपर एल्यूमिनियम पाऊडर जैसा टिकाऊ ह्वाइट कोटिंग है। कुछ छोटे स्टेशन छोड़ दिये जाएँ तो, प्लेटफॉर्म और ट्रेन-डिब्बों के फ्लोर की ऊँचाई समान रहती है। गाड़ी के प्लेटफॉर्म आने पर प्लेटफॉर्म और डिब्बे के बीच एक छोटी प्लेट रख दी जाती है, जिसके ऊपर आसानी से सूटकेस खींचा जा सकता है। चलती ट्रेन में दरवाजे नहीं खुलते। विमानों की तरह इन ट्रेनों में भी vacuum flush वाला शौचालय होता है। नीचे बैठनेवाले कमोडों में भी vacuum flush की व्यवस्था होती है।

एक्सप्रेस ट्रेन में कोच के अन्दर कोच अटेन्डेन्ट के

लिए एक छोटी सी केबिन रहती है। इसमें यात्रियों के लिए फ्लॉस्क में गरम पेय जल की व्यवस्था रहती है। यदि किसी यात्री का सूटकेस बाहर लटक रहा हो अथवा बीच में रखा हो, तो अटेन्डेन्ट उसे ठीक करने के लिए कहता है। रात्रि में ठीक समय पर अटेन्डेन्ट खिड़की के परदे लगा देता है और बत्तियाँ बुझा देता है। उल्लेखनीय बात यह है कि ट्रेन शुरू होने के बाद कोच अटेन्डेन्ट आपके मूल टिकिट के बदले एक प्लास्टिक पास देता है, जिससे आप कभी भी ट्रेन के बाहर जा सकते हैं और भीतर आ सकते हैं। ट्रेन के गन्तव्य स्टेशन पर पहुँचने के पहले अटेन्डेन्ट आपकी सीट पर आकर पुन: प्लास्टिक पास लेकर आपकी मूल टिकिट लौटा देता है। इसका लाभ यह है कि आपकी स्टेशन आने पर उसकी सूचना

अपने आप मिल जाती है।

चीन की सभी ट्रेनों के प्रत्येक डिब्बों में खुली जगह में तीन बेसिनों की व्यवस्था होती है, उसके साथ एक स्वच्छ कचरे का डब्बा और हाथ धोने का साबुन रखा रहता है। चीन बहुत ही ठण्डा देश है, इसलिए सभी स्टेशनों पर गरम पेय जल की भी व्यवस्था रहती है। एक इलेक्ट्रॉनिक डिस्पले पर ट्रेन की गति, तापमान, अगला स्टेशन और अन्य जानकारियाँ उपलब्ध रहती हैं। रोचक बात यह है कि शौचालय खाली है कि नहीं, यह दिखानेवाला चिन्ह भी इलेक्ट्रॉनिक बोर्ड पर दिखता है ! कोच के बाहर और भीतर दोनों जगह डिस्पले पॅनल पर कोच क्रमांक रहता है। ट्रेन कर्मचारियों के द्वारा ट्रॉलियों में सामान्य खाद्य-सामग्री भी उपलब्ध रहती है। बाहर का कोई भी व्यक्ति ट्रेन में अथवा प्लेटफॉर्म पर कोई वस्तु बेच नहीं सकता। स्टेशन पर विश्राम-स्थलों पर दुकानें रहती हैं। भोजनयान (pantry car) के अन्दर एक साफ-सुथरा और टेबल-क्लॉथ वाला भोजन-कक्ष (dining hall) रहता है।

चीन की सभी ट्रेनें standard guage (४ फुट ८.५ इन्च) पटरियों पर चलती हैं। इसकी तुलना में भारत में Indian broad guage (५ फुट ६ इन्च) है। चौड़ाई कम होने से चीन की ट्रेनों में साईड सीटें नहीं हैं। इसके बदले वहाँ स्प्रिंग लोडेड सीटें रहती हैं, ये यात्री के उठने पर अपने-आप फोल्ड हो जाती हैं। इन सीटों को कोई आरक्षण क्रमांक नहीं होता है और कोई भी उपयोग में ला सकता है। प्रत्येक यात्री को भोजन आदि करने के लिए एक लंबा और पतला cantilever बोर्ड रहता है। इस बोर्ड के नीचे एक छोटी सी ट्रे रहती है, जिसमें यात्री कूड़ा आदि फेंक सकता है। यह ट्रे बीच-बीच में खाली की जाती है। तीन टियर वाले कोच के प्रत्येक कम्पार्टमेन्ट में ६ शायिका (berth) रहती है और प्रथम दर्जे के कूपे में ४ शायिका रहती हैं। चीन में हमारे जैसा २ टियर वाला डिब्बा नहीं होता। चीन में शायिका ६ फुट लम्बी और ६ फुट चौड़ी होती है, जबकि भारत में ६ फुट लम्बी और ३ फुट चौड़ी होती है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रेलमार्ग के क्षरण को रोकने के लिए सर्वत्र slope embankments की रचना concrete diamond grids, घास आदि से की गई है। रेलवे लाईन के दोनों ओर बाड़ा लगाया गया है, जिससे कोई पशु रेलमार्ग पर न आ सके।

स्काय ट्रेन

शंघाई से लासा जाने की रेल-लाईन को स्काय ट्रेन कहा जाता है, क्योंकि इसका अधिकांश मार्ग समुद्र तल से ४००० मीटर ऊपर पहाड़ों के बीच से जाता है। यह ट्रेन दो अत्यधिक क्षमता वाले NZ2 डीजल लोकोमोटिव (प्रति ५००० हॉर्सपावर) से खींची जाती है। यह ट्रेन शंघाई से लासा की ४३७३ कि.मी. की दूरी तय करती है। लेखक को भी इस ट्रेन से यात्रा करने का अवसर मिला और उसने देखा कि इस ट्रेन के कुल मार्ग में से लगभग २००० कि.मी. का मार्ग भव्य हिमालय से होकर जाता है। ट्रेन यह पूरा पथ सुरंग, पुल और विशेष निर्मित रेलमार्ग से पार करती है। इसकी तुलना हमारे ७३६ कि.मी. लम्बे कोंकण रेलवे से की जा सकती है, जिसका लगभग ४०० कि.मी. का रास्ता पहाड़ों से होकर गुजरता है। स्काय ट्रेन का यह रेलमार्ग मानवीय क्षमता का अद्भुत पराक्रम है ! सचमुच में यह एक अद्भुत उपलब्धि है। इसका निर्माण कार्य अपने आप में एक रोमांचकारी कहानी है। विशाल,

भव्य, उत्तुंग हिमालय पहाड़ों के बीच रेलयात्रा करना, जिसका लगभग ५०० कि.मी. का भाग नित्य हिमाच्छादित ही रहता है, वह अपने आप में रोमांचकारी आश्चर्यचकित करनेवाला दृश्य है। रमणीय भूमि, विशाल और स्वच्छ झीलें, टेढ़ी-मेढ़ी इठलाती नदियाँ और वन्य पशु, मानो आपकी यात्रा में ये सभी आपके साथ हों। प्रत्येक कोच में आक्सीजन और डॉक्टर की व्यवस्था भी होती है।

रेलवे स्टेशन

चीन के अधिकतर रेलवे स्टेशन आधुनिक तकनीक से सुसज्जित हैं। बड़े शहरों में रेलवे स्टेशन हवाई-अड्डों की तरह दिखते हैं। ये रेलवे स्टेशन पूर्णरूपेण वातानुकूलित हैं, सभी यात्रियों के लिए विश्राम-गृहों (lounge) में

कुर्सियाँ हैं। यन्त्रचालित सीढ़ियाँ (escalator), ऑटोमेटिक टिकिट सिस्टम आदि अनेक सुविधाएँ हैं। आश्चर्य की बात यह है कि आपको यहाँ थोड़ा सा भी कूड़ा-कचरा देखने को नहीं मिलेगा। विशेष बात यह है कि इन स्टेशनों की संचालन-पद्धति आधुनिक हवाई-अड्डों की तरह है। हवाई-अड्डों की तरह यहाँ के रेलवे-स्टेशनों में यात्रियों के आगमन और प्रस्थान के लिए पृथक् व्यवस्था है। प्रस्थान के समय यात्रियों को सुरक्षाकर्मियों की निगरानी में जाना पड़ता है। यात्रियों को मेटल डिटेक्टर द्वारा और उनके सामानों की एक्स-रे द्वारा जाँच होती है। ट्रेन के आगमन तक सभी यात्रियों के आरामदायक विश्रामगृह में रुकने की व्यवस्था रहती है। ट्रेन आने के पहले एक बोर्डिंग गेट खुलता है, तब टिकिटें मशीन द्वारा जाँच की जाती हैं और यात्रीगण बिना हड़बड़ी एवं धक्का-मुक्की से एक-एक कर अपने गन्तव्य कोच की ओर जाते हैं। ट्रेन आने पर कोच अटेन्डेन्ट दरवाजे पर खड़ा हो जाता है और पुन: टिकिट जाँच करता है। जब तक ट्रेन खड़ी रहती है, तब तक अटेन्डेन्ट एक सैनिक की भाँति वहाँ खड़ा रहता है। यात्री के अलावा किसी को भी प्लेटफॉर्म पर आने की अनुमति नहीं होती है। आगन्तुक अधिक से अधिक विश्राम-गृह तक आ सकते हैं। **(क्रमशः)**

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

अपने लक्ष्य और देशसेवा के प्रति आधुनिक युवक क्या कहते हैं : एक साक्षात्कार

वर्तमान आधुनिक युग में जहाँ सुख-सुविधाओं का आधिक्य है। भौतिक ऐश्वर्य का चकाचौंध आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। फिर भी नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों पर जीवन यापन करनेवाले युवकों की जिज्ञासा बढ़ी है। उनके जीवन का लक्ष्य उच्च है और स्वामी विवेकानन्द के प्रति उनकी अपार श्रद्धा है। वे स्वामीजी को अपने जीवन का आदर्श बनाकर अपने को आत्मविश्वास और महानता से धन्यता का अनुभव करते हैं। प्रस्तुत है चिरंजीव रजत कुमार पात्र द्वारा लिए गए छात्र-छात्राओं से साक्षात्कार के कुछ अंश –

शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़) के छात्र **पुरुषोत्तम साहू** ने कहा – "मेरे जीवन का लक्ष्य है सभी गरीबों की सहायता करना और एक अच्छा आदमी बनना। मैं अपना सर्वांगीण विकास चाहता हूँ। मैं अपने देशवासियों से प्रेम करता हूँ। मैं अपने देश में एकता लाना चाहता हूँ, जिससे सबको समान अधिकार मिल सकें । मैं सबको जागरुक करके भ्रष्टाचारमुक्त भारत बनाना चाहता हूँ। युवकों को उनकी शक्ति का आभास कराकर सही उपयोग करना होगा। मुझे स्वामी विवेकानन्द की यह वाणी अच्छी लगती है – शक्ति ही जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है।"

पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) के एम.एस-सी. के छात्र **अजहर कुरैशी** ने कहा – "मेरे जीवन का लक्ष्य है, अपने परिवार, अपने मोहल्ले, शहर और अपने भारत देश के लिये मैं कुछ करना चाहता हूँ। मैं प्रसिद्धि पाना चाहता हूँ। मैं अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करना चाहता हूँ। मैं भारत से प्रेम करता हूँ, क्योंकि यह हमारी जन्मभूमि और कर्मभूमि है। यदि मुझे अवसर मिले, तो मैं अपने देशवासियों के लिए बहुत कुछ करना चाहता हूँ। युवाशक्ति सर्वशक्तिमान है, यदि वह हिंसक, अनुशासनहीन न हो। हमारे वरिष्ठों ने हमारे देश की आजादी के लिए जो कुछ भी किया है, उन्हें हम भूल नहीं सकते। इस देश को भ्रष्टाचारमुक्त करने के लिए इसकी शुरुआत अपने घर, परिवार, समाज से करनी होगी। मैं चाहूँगा कि हर मोहल्ले, हर शहर में एक ऐसी संस्था हो, जो उस क्षेत्र के लोगों का सर्वांगीण विकास कर सके। यदि उनकी रुचि खेल-कूद, नृत्य, नाटक, गायन, जिस भी क्षेत्र में हो, उसे नि:शुल्क सिखाया जाय। क्योंकि धन के अभाव में उस क्षेत्र की प्रतिभा दब जाती है। यदि मोहल्ले की प्रतिभा शहर में प्रसिद्ध न हो पायी, तो वह देश को कभी प्रसिद्धि नहीं दिला सकती।"

शा.ना. विज्ञान महाविद्यालय की रसायन विज्ञान की छात्रा **चेमीन साहू** कहती हैं – "मैं प्रोफेसर बनना चाहती हूँ, जिससे मैं भविष्य में बच्चों को अच्छी बातें सिखा सकूँ और स्वयं सीख सकूँ। मैं अपना सर्वांगींण विकास चाहती हूँ और गरीब बच्चों को शिक्षा देना चाहती हूँ। भारत की युवाशक्ति सर्वशक्तिमान है और भारत का विकास युवाशक्ति ही कर सकती है। मैं भ्रष्टाचारमुक्त भारत बनाना चाहती हूँ। सभी लोग अपना-अपना कर्तव्य-पालन करें, एक-दूसरे की सहायता करें और न रिश्वत लें, न रिश्वत दें। मुझे स्वामी विवेकानन्द का वह विचार अच्छा लगता है – उठो जागो और लक्ष्यप्राप्ति तक रुको मत।"

विज्ञान महाविद्यालय के छात्र **मिनेष कुमार मरकाम** कहते हैं – "मेरा लक्ष्य है कि मैं एक सफल व्यक्ति बनूँ और लोगों की मदद कर सकूँ। मैं अपना सर्वांगीण विकास कर देश में जागरुकता और एकता लाना चाहता हूँ, क्योंकि एकता में ही शक्ति है। हम लोगों में देशप्रेम जाग्रत कर देश को भ्रष्टाचारमुक्त कर सकते हैं। मुझे स्वामीजी का वह आदर्शवाक्य अच्छा लगता है – आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।"

उसी महाविद्यालय की एम.एस-सी. की छात्रा **मोनिका नेताम** ने कहा – "अपने समाज को विकसित करना और शिक्षा से आगे बढ़ाना ही मेरा लक्ष्य है। मैं अपना सर्वांगीण विकास करना चाहती हूँ, जिससे मैं दूसरों की सहायता कर सकूँ। मैं अपने देशवासियों से प्रेम करती हूँ। **मैं देश के लिये कुछ करना चाहती हूँ, क्योंकि मैंने देश का नमक खाया है।** मैं पर्यावरण को स्वच्छ और सुन्दर बनाना चाहूँगी। युवाशक्ति में मुझे विश्वास है, क्योंकि युवाओं में जोश और जुनून होता है। वे किसी भी कार्य को जल्दी पूरा कर सकते हैं। स्वयं ईमानदार बनकर भ्रष्टाचार को मिटाया जा सकता है। मैं भारत को शक्तिशाली बनाने हेतु युवाओं को एक होने के लिये आह्वान करती हूँ। वे जाति, धर्म के भेद-भाव को भूलकर एक-दूसरे की सहायता करने के लिए आगे बढ़कर शक्तिशाली देश का निर्माण करें।"

पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में एस.एस-सी. के छात्र चिरंजीव **रजत कुमार पात्र** ने कहा – ''मेरे जीवन का लक्ष्य है, मैं शिक्षा प्राप्त कर आत्मनिर्भर होकर समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बनूँ, अपना सर्वांगीण विकास करूँ और दूसरों को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनने में सहायता करूँ। **भारत देश में रहनेवाले समाज के सभी वर्गों, धर्मों के लोग मेरे माता-पिता, भाई-बहन के समान हैं, इसलिए मैं पूरे भारतवासियों से अधिक प्रेम करता हूँ।** मैं अपने देशवासियों के लिए कुछ करना चाहता हूँ। मैं समाज-सेवक बनकर देश में गरीबी, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी के विरुद्ध संघर्ष कर इससे देश को मुक्त करने का प्रयास करूँगा। भारत की युवाशक्ति सर्वशक्तिमान है और यह संगठित होकर देश को सबसे ऊँची ले जाएगी, जिसे दुनिया की कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती। भ्रष्टाचार हमसे ही शुरू होता है और हमसे ही समाप्त होगा। युवकों के एकजुट होकर विरोध करने से भ्रष्टाचार मिटेगा और देश आगे बढ़ेगा। **हमें गर्व है कि हम भारत देश के युवा हैं**। भारत को सर्वशक्तिमान बनाने के लिए हम नई तकनीक की खोज करेंगे, उसका शीघ्र विस्तार करेंगे और देश को गरीबी और भ्रष्टाचार से मुक्त करेंगे। पूरी स्फूर्ति और ताजगी से कार्य एक युवा ही कर सकता है। इसलिये युवाशक्ति पर मुझे अधिक विश्वास है। स्वामी विवेकानन्द जी का वह विचार मुझे अच्छा लगता है – ''मैं उस प्रभु का सेवक हूँ, जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।''

शास. नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा **प्रीति निर्मलकर** कहती हैं – ''मैं अपनी चहुँमुखी उन्नति कर एक अच्छा इंसान बनना चाहती हूँ। मैं इस देश को शिक्षित देश और सम्पन्न देश बनाना चाहूँगी। अनेकता में एकता युवाशक्ति ला सकेगी और देश के विकास में सहायता कर सकेगी। जनता अपने कर्तव्य का पालन करे, तभी देश भ्रष्टाचार से मुक्त हो सकेगा।''

विज्ञान महाविद्यालय में एम.एस-सी. प्रथम वर्ष की छात्रा कुमारी जानवी, रश्मिराज सिंह, पुष्पलता जायसवाल और छात्र सुमीत सिंह सबने सर्वांगीण चरित्र-निर्माण कर एक चरित्रवान व्यक्ति बनकर दूसरों के विकास में सहायता करने की बात कही। सबको स्वामी विवेकानन्द जी का वह प्रसिद्ध प्रेरणा-मन्त्र आत्मविश्वास, उत्साह और शक्ति संचार करता है – **उठो, जागो और तब तक चलते रहो, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय।**〇〇〇

मृत्यु के क्षणों में कन्हाईलाल की मोहिनी हँसी

मोतीलाल राय

कन्हाईलाल एक महान देशभक्त क्रान्तिकारी थे। उनकी फाँसी के बाद उनका शव ले जाने के लिए उनके बड़े भाई आशु बाबू, अन्य परिवार के तीन लोग और मुझे काल कोठरी में जाने की अनुमति मिली थी। कन्हाईलाल के शव को देखकर सभी लोग रोने लगे। किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी, शव के ऊपर से कम्बल हटाने की। तभी गोरा जेलर बोल उठा – **''आप रोते क्यों हैं? जिस देश में ऐसे वीर पैदा होते हैं, वह देश धन्य है ! मरेंगे तो सभी, किन्तु ऐसी मौत कितने मरते हैं?''**

हमने आश्चर्यचकित होकर देखा, तो वह कर्मचारी रो रहा था। उसने कहा – मैं जेलर हूँ। कन्हाई के साथ मेरी बहुत बातें होती थीं। फाँसी की सजा सुनाने के बाद से उसकी खुशी का पारावार न था। कल शाम उसके चेहरे पर जो मोहिनी हँसी मैंने देखी, वह कभी न भूलेगी। मैंने कहा – ''कन्हाई आज हँस रहे हो, किन्तु कल मृत्यु की कालिमा से तुम्हारे ये हँसते हुए होंठ काले पड़ जाएँगे। दुर्भाग्य से कन्हाई की फाँसी लगने के समय भी मैं वहाँ उपस्थित था। कन्हाई की आँखों पर पट्टी बाँध दी गई थी। वह शिकंजे में कसा जानेवाला ही था, ठीक उसी समय उसने घूमकर मेरी ओर संकेत किया और कहा – 'क्यों मिस्टर, इस समय मैं कैसा लग रहा हूँ? ओह ! यह वीरता ! इस प्रकार की वीरता का होना, रक्त-मांस के मानवों के लिये सम्भव नहीं है।''

हमने चकित होकर ये बातें सुनी। उसके बाद डरते-डरते ओढ़ाए हुए कम्बल को उठाकर कन्हाईलाल को देखा। उस तपस्वी कन्हाईलाल के दिव्य स्वरूप के वर्णन के लिये मेरे पास भाषा नहीं है। चौड़ा माथा लम्बे-लम्बे बालों से ढँका हुआ था, अधखुले नेत्रों से अमृत ढुलक रहा था, कसे हुए होंठों से संकल्प की रेखा फूट पड़ती थीं, विशाल भुजाओं की मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं। आश्चर्य है कन्हाई के किसी भी अंग पर मृत्यु की मनहूस छाया तक नहीं थी। कहीं विभत्सता के चिह्न नहीं थे। उसके पवित्र मुखश्री पर कहीं विकृति नहीं थी। कौन ऐसा अभागा है, जो इस मृत्यु पर ईर्ष्या न करेगा?

(क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक इतिहास, पृ.-१४ से साभार)

ब्राह्ममुहूर्त में सुस्वास्थ्य, विद्यार्जन और ईश्वर-स्मरण करें

प्राचार्य डॉ. योगेशचन्द्र मिश्र

भारतीय चिन्तन में सौ वर्षों तक स्वस्थ-जीवन जीना और सत्कर्मानुष्ठान करना, ऐसी प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य आकांक्षा रही है। अंग-प्रत्यङ्गों के स्वस्थ एवं सबल रहते हुए सुखी जीवन की याचना शुक्ल यजुर्वेद (३६/२४) - के मन्त्र में की गयी है – **पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत् श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।**

संयमयुक्त आहार एवं विहार स्वास्थ्य का मूल मन्त्र है। भगवद्गीता (६/१६-१७) के अनुसार आहार एवं निद्रा का सन्तुलन दुःख, रोग को नष्ट करने का सुविज्ञात एवं सर्वसुलभ साधन है –

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।
युक्ताहारविहास्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

दिनचर्या का प्रारम्भ प्रातःकाल जागरण से होता है। इस समय सोना शास्त्र में निषिद्ध है। आचारेन्दु में उल्लेख है –

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।
त्वां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।

प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी विद्वान प्रातःकाल शीघ्र जागरण को स्वास्थ्य के लिये उपयोगी मानते हैं –

Early to bed and early to rise,
makes a man healthy wealty and wise.

आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र में जागरण के लिये ब्राह्ममुहूर्त का समय निर्धारित किया गया है। आचार्य वाग्भट के अनुसार -

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेज्जीर्णाजीर्ण निरूपयन् ।
रक्षार्थमायुषः स्वस्थो ...।।(अष्टांगहृदय संग्रहसूत्र)
ब्राह्म मुहूर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।।
(अष्टांगहृदय सू. २/१)

रात्रिका अन्तिम प्रहर ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है –

रात्रेश्च पश्चिमे यामे मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ।।

वस्तुतः यह सूर्योदय लगभग डेढ़ घंटे पूर्व का समय है। ब्रह्म शब्द ज्ञान एवं परमात्मा के लिये प्रयुक्त किया जाता है। ईश्वर-स्मरण एवं ज्ञानप्राप्ति के लिये सर्वोत्तम समय ब्राह्ममुहूर्त होता है। इस समय उठकर आत्मचिन्तन, स्व का विचार एवं सत्य-चिन्तन करणीय है। मनुस्मृति में कहा गया है – **ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्यते धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।**
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ।।४/९२

यह समय प्रायः कोलाहल से रहित एवं अत्यन्त शान्त होता है। इसलिये विद्यार्थियों को विद्याभ्यास में सुगमता रहती है। पर्यावरण में ध्वनि एवं धूल का प्रदूषण इस समय सबसे कम होता है। अतएव व्यायाम एवं टहलना आदि स्वास्थ्यवर्धक क्रियाओं के लिये भी यह समय सर्वाधिक उपयुक्त है।

आचार्य सुश्रुत के अनुसार इस काल में जागरण स्वास्थ्य एवं ईश्वर-स्मरण के लिये अत्यन्त उपयोगी है –

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
तत्र सर्वाधिशान्तर्थं स्मरेच्च मधुसूदनम् ।।

पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, तेज (सूर्यरश्मियाँ). जल एवं पृथिवी इस समय शुद्धतम स्थिति में रहते हैं। शुद्ध वायु स्वास्थ्यकर द्रव्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके सेवन से प्राणशक्ति एवं शारीरिक बल में अभिवृद्धि होती है। कई विद्वान शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध हरियाली से भरी भूमि, सूर्य का विपुल प्रकाश तथा विपुल आकाश को सम्मिलित रूप से पञ्चामृत कहते हैं और इन प्राकृतिक पञ्चामृत का सेवन व्यक्ति को आरोग्यवान, ज्ञानवान एवं भाग्यवान बनाता है। अथर्ववेद प्रातःकालीन सूर्यरश्मियों में रोगनाशक शक्ति का उल्लेख करता है –

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशो ङ्गभेदमशीशमः।
(९/८/२२)

प्रातःकालीन सूर्य-किरणों में उपलब्ध अल्ट्रा वॉयलेट रश्मियों के द्वारा विटामिन डी तथा ई के निर्माण की प्रकिया को आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। शरीर के अनेक विकार (आलस्य, विबन्ध आदि) प्रातः जागरण मात्र से ही समाप्त हो सकते हैं।

वस्तुतः ब्राह्ममुहूर्त का जागरण हमारे लिये स्वास्थ्य एवं ज्ञान का अनेक अवसर प्रदान करता है। अतः आबालवृद्ध सबको इस ब्राह्ममुहूर्त में उठकर अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सम्पन्न होकर जीवन को आनन्दमय बनाना चहिए। ○○○
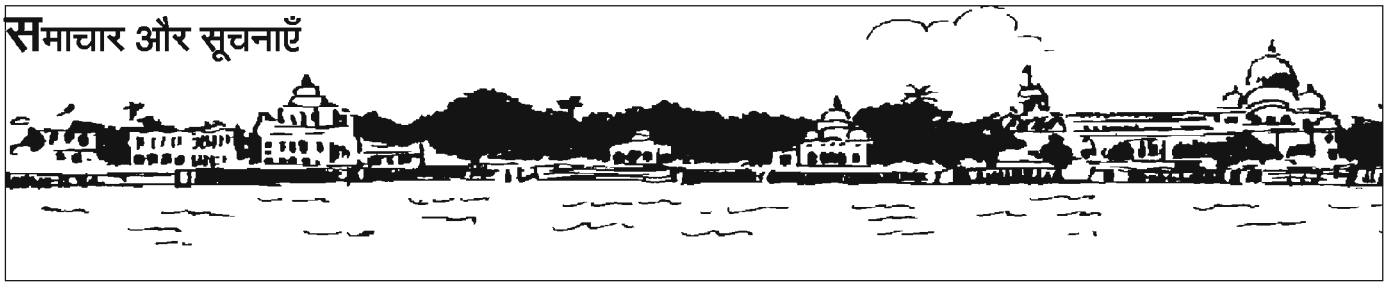
नेपाल में राहत-कार्य अनवरत जारी है

नेपाल में आये विनाशकारी भूकम्प ने नेपाल के जन-जीवन की बहुत क्षति पहुँचायी। रामकृष्ण मिशन ने अविलम्ब प्रारम्भिक राहत-कार्य आरम्भ किया था,जिसकी विस्तृत सूचना हमने विवेक ज्योति के जुलाई अंक में प्रकाशित किया था और अभी वहाँ राहत-कार्य जारी है।

अबूझमाड़ में २०७ ट्यूब वेल लगाये गये

फरवरी, मार्च २०१५ में रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर ने राज्य सरकार के आग्रह पर अबूझमाड़ के दूरस्थ आदिवासी क्षेत्रों में २०७ ट्यूब वेल लगवाया।

पूज्य स्वामी गौतमानन्द जी महाराज छत्तीसगढ़ में

रामकृष्ण मठ-मिशन के वरिष्ठ न्यासी और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज १६ अप्रैल, २०१५ को रायपुर में पधारे। १७ को प्रात: ८ बजे बिलासपुर के लिये प्रस्थान किये। १८ को रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर में पूज्य महाराज जी जिज्ञासु भक्तों को दीक्षा प्रदान की। वहीं शाम को श्रीरामकृष्ण मन्दिर में स्वामीजी ने भक्तों को श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश पर प्रवचन दिया। स्वामीजी ने वहाँ के विजिटर्स बुक में लिखा – "मैं इस रामकृष्ण सेवा समिति में शायद पन्द्रह साल बाद आया हूँ। इस लम्बे अवकाश में इस आश्रम की बहुत उन्नति देखकर आनन्दित हो रहा हूँ। खासकर मन्दिर में श्रीरामकृष्ण देव की भव्य मूर्ति को देखकर बहुत आनन्द हुआ। इसी १७ और १८ को यहाँ रहा। इस आश्रम में कुछ छात्र रहकर पढ़ाई-लिखाई कर रहे हैं। आम लोगों के लिये कम्प्यूटर ट्रेनिंग और टेलरिंग क्लास चलाये जा रहे हैं। मन्दिर में श्रीरामकृष्णदेव, श्रीसारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन मनाने के साथ और भी कई धार्मिक उत्सव और गतिविधियाँ चल रही हैं। इस आश्रम की बहुमुखी उन्नति के लिये मैं भगवान श्रीरामकृष्ण देव, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द जी हार्दिक प्रार्थना करता हूँ। जय रामकृष्ण !"

अम्बिकापुर आश्रम में दीक्षा – १९, अप्रैल, २०१५ को महाराजजी श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवा आश्रम, अम्बिकापुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने २०-२१ अप्रैल को दीक्षा प्रदान की। वहाँ दोनों दिन पूज्य महाराजजी अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण के दिव्य जीवन पर प्रवचन दिया। स्वामी आत्मज्ञानन्दजी ने भजन प्रस्तुत किये और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने सद्गुरु की जीवन में आवश्यकता पर व्याख्यान दिया।

२१ की रात में ट्रेन से चलकर महाराज २२ को रायपुर पहुँचे। २३ को प्रात: ५.३० बजे नारायणपुर हेतु प्रस्थान किये। नारायणपुर में कई दिन दीक्षा हुई। कापसी में मन्दिर का उद्घाटन महाराज जी के कर-कमलों से हुआ।

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में सभा – ८ मई, २०१५ को संघगुरु स्वामी गौतमानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में पूर्वाह्न में पहुँचे। शाम को विवेकानन्द विद्यापीठ में 'श्रीरामकृष्ण की प्रासंगिकता' पर स्वामी गौतमानन्द जी ने व्याख्यान दिया। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने संघगुरु का परिचय देकर उनके सान्निध्य में वर्षों व्यतीत कुछ घटनाओं का उल्लेख किया। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने स्वागत भाषण और धन्यवाद ज्ञापन वीरेन्द्र वर्मा ने दिया।

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में दीक्षा – १०-११ मई को रायपुर आश्रम में पूज्य महाराज जी ने जिज्ञासुओं को दीक्षा प्रदान की और १२, मई को प्रात: चेन्नई हेतु प्रस्थान किये।

अम्बिकापुर में विविध कार्यक्रम – श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवा आश्रम, देवीगंज रोड, अम्बिकापुर में १५ मार्च, २०१५ रविवार को **श्रीरामकृष्ण कथा** का आयोजन किया गया, जिसमें प्रात: ७.३० बजे से ठाकुर की संक्षिप्त जीवनी का पूरा पाठ किया गया। इसमें १५० भक्त उपस्थित थे। ४ मई, सोमवार को **मन्दिर-स्थापनोत्सव एवं सारदा देवी कथा** का आयोजन हुआ। ५.३० बजे मंगल आरती के बाद माँ की संक्षिप्त जीवनी का पूरा पाठ हुआ, हवन आदि हुए और सबगको प्रसाद दिया गया।

बिजुरी में वार्षिकोत्सव, बिलासपुर में सभा हुई – रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी में ३० अप्रैल को वार्षिकोत्सव मनाया गया, जिसमें स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी एकात्मानन्द और श्री सतीश द्विवेदी और नागेन्द्र पाण्डेय जी उपस्थित रहे। सेल के अधिकारी श्री ए.के. द्विवेदी भी उपस्थित थे। बच्चों ने बहुत ही सुन्दर और प्रेरणाप्रद कार्यक्रम प्रस्तुत किये। स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने 'बच्चों के निर्माण में अभिभावकों की भूमिका' पर व्याख्यान दिया। १ मई, २०१५ को सन्ध्या आरती के बाद रामकृष्ण आश्रम, बिलासपुर, कोनी में 'श्रीरामकृष्ण की कृपा' पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिया। ○○○

Phone (033) 2654-1144, 1180,
5391, 8494, 9581, 9681
Tele-fax: (033) 2654-6179
E-mail: hqsv150.convener@gmail.com

रामकृष्ण मिशन
(मुख्यालय)
पो. बेलूड़ मठ, जिला - हावड़ा
प. बंगाल, पिन - ७११२०२, भारत

निवेदन

प्रिय मित्रो !

स्वामी विवेकानन्द की १५०वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर केन्द्र सरकार, भारत की सहायता से 'गदाधर अभ्युदय प्रकल्प' (GAP) – निर्धन बालकों के लिए सर्वांगीण विकास की योजना, का कार्यान्वयन अक्तूबर २०१० से सितम्बर २०१४ तक किया गया। भारत के विभिन्न राज्यों में GAP की १७४ इकाइयों के द्वारा शहर और दूरवर्ती गाँवों के झोपड़ी-झुग्गी में रहनेवाले १७,४०० से अधिक अल्पसुविधा प्राप्त बच्चों को लाभ पहुँचाया गया। जाति, पंथ, वर्ण, धर्म के भेदभाव बिना GAP ने इन बच्चों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, और आध्यात्मिक विकास का सुअवसर प्रदान किया।

शारीरिक विकास के अन्तर्गत उन्हें प्रतिदिन पौष्टिक पूरक आहार तथा समय-समय पर उन्हें स्कूल बैग, गणवेश, शालेय वस्तुएँ, छतरियाँ, बरसाती-कोट, चप्पल, साबुन इत्यादि दिये जाते थे। इसके साथ वे खेल, व्यायाम, सम्पूर्ण स्वास्थ्य परीक्षण और स्वास्थ्य-जानकारी आदि सत्रों में भी भाग लेते थे। **मानसिक विकास** के लिए संगीत, नाटक, वेदपाठ, चित्रकला, प्रपठन, पाठ-आवृत्ति, नृत्य, महान व्यक्तियों के जीवन व उपदेशों से आदर्श-शिक्षा और शैक्षिक चित्रपट आदि की व्यवस्था की गई थी। **बौद्धिक विकास** हेतु बच्चों को विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषयों पर अतिरिक्त कक्षाएँ ली जाती थीं। इससे उन्हें अच्छे शिक्षण-संस्थानों में प्रवेश मिल सका। विद्यालय में न जा सकने वाले छात्रों को विशेष प्रशिक्षण देकर उन्हें विद्यालय में प्रवेश कराया गया। आगे जाकर उन्होंने और भी योग्यता अर्जित की। **आध्यात्मिक विकास** के लिए बच्चों को प्रार्थना, भजन और ध्यान का अवसर भी दिया गया।

साधु, स्वयंसेवक और भक्तों की स्नेहमयी सेवा और प्रशिक्षण द्वारा गदाधर अभ्युदय प्रकल्प ने बच्चों, उनके अभिभावकों और आस-पास के क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रभाव उत्पन्न किया। वे इस प्रकल्प से इतने लाभान्वित हुए कि हमें यह योजना जारी रखने का निवेदन कर रहे हैं। गदाधर अभ्युदय प्रकल्प को चालू रखने के लिए **हमें वार्षिक ८.५ करोड़ रुपये की आवश्यकता है।** अत: हम आप सभी सेवाभावी सज्जनों से निवेदन करते हैं कि इस महान सेवाकार्य में आप उदारतापूर्वक आगे बढ़कर यथासाध्य सहयोग दें। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में चल रहे धर्मार्थ संस्थान भी इस पुनीत सेवाकार्य में अपना सहयोग दे सकते हैं।

दान की राशि नकद अथवा चेक / डिमाण्ड ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन' (कोलकता में प्रदेय) बनवाकर जनरल सेक्रेटरी के नाम से ऊपर दिये गए पते पर भेज सकते हैं। इसके अलावा हमारी वेबसाईट की लिंक - http://www.belurmath.org/donation_cca/donation.php पर गदाधर अभ्युदय प्रकल्प के लिए ऑनलाईन दान देने की भी व्यवस्था है। 'रामकृष्ण मिशन' को दिये गए दान आयकर अधिनियम 1961 के 80 G(5)(vi) धारा के अन्तर्गत आयकर मुक्त है। स्थायी निधि (कोरपस फंड) के अन्तर्गत लिए गए दान के ब्याज को गदाधर अभ्युदय प्रकल्प के संचालनार्थ अथवा इसके मासिक, वार्षिक खर्च में उपयोग किया जायेगा।

बेलूड़ मठ की वेबसाईट पर गदाधर अभ्युदय प्रकल्प का नया वेब-पेज http://www.belurmath.org/gap.htm खोला गया है। इसमें चित्र, डोक्यूमेन्ट्री सहित गदाधर अभ्युदय प्रकल्प की विस्तृत जानकारी दी गई है।

आपके सकारात्मक प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में

प्रभु सेवा में आपका,
(स्वामी सुहितानन्द)
महासचिव

०५ मई, २०१५